जैनधर्म की कहानियाँ

भाग- 29

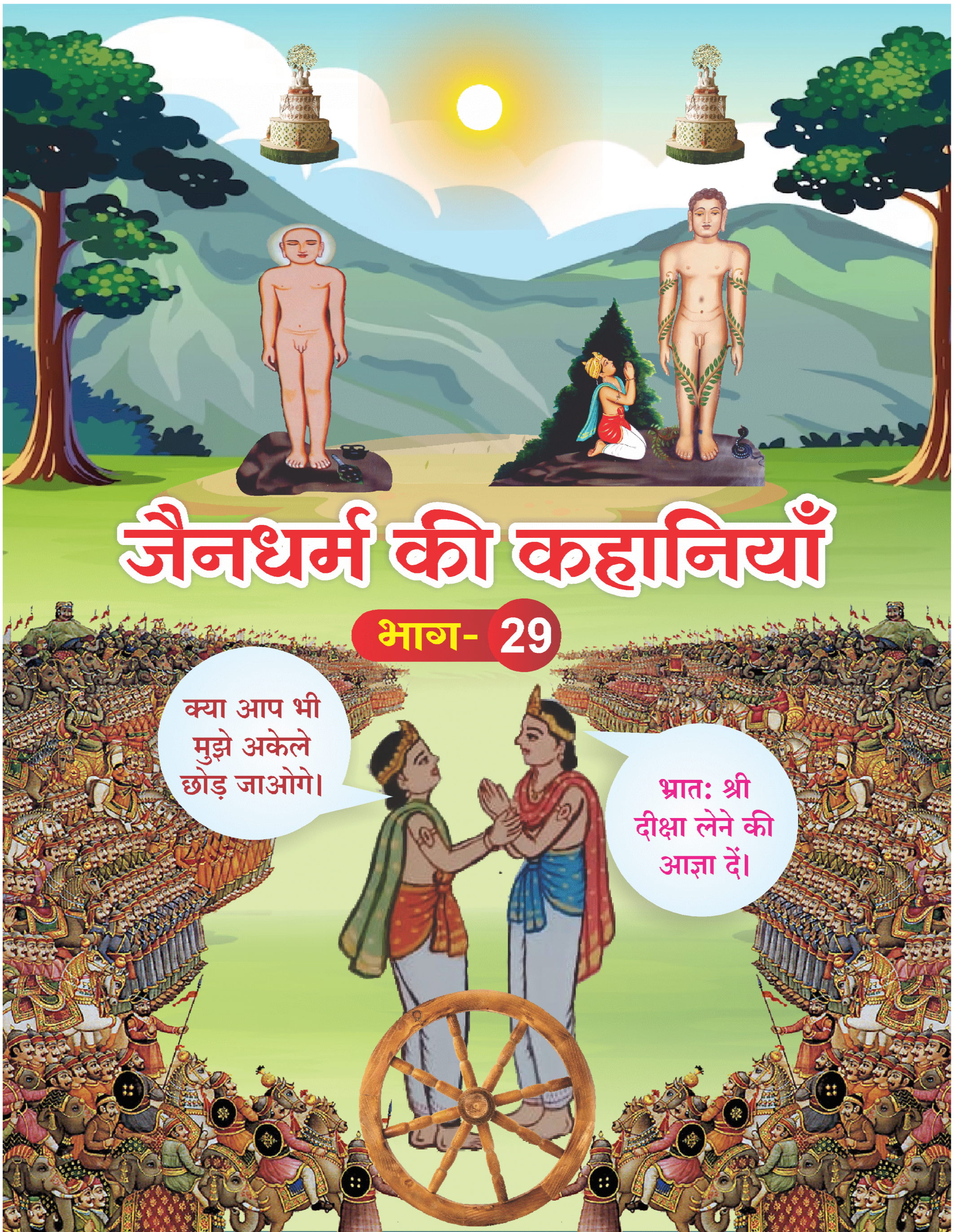

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन–खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन–सोनगढ़

श्री खेमराज गिड़िया
जन्म : 27 दिसम्बर, 1918
देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया
जन्म : 1922
देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)
पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।
सत्-समागम : सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले

पुत्र : दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

पुत्रियाँ : ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ३९ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भरत से भगवान : एक यात्रा)

(भाग - 29)

लेखक :

पण्डित ऋषभ जैन, शास्त्री

उस्मानपुर, दिल्ली

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़ – ४९१ ८८१ (छत्तीसगढ़)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

कहान रश्मि, सोनगढ़ – 364250 (सौराष्ट्र)

अबतक प्रकाशित ३०००, प्रस्तुत संस्करण - १००० प्रतियाँ
श्रीमद् जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव, सोनगढ़ के अवसर पर
(१९ से २६ जनवरी, २०२४)

न्यौछावर
बीस रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान

१. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

२. पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
कहाननगर, वेलतगांव रास्ता लामरोड देवलाली,नासिक-४२२ ४०१

३. तीर्थधाम मंगलायतन
पो.- सासनी २०४ २१६ जिला- हाथरस (उ.प्र.)

४. श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट
आ. कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर सिद्धक्षेत्र-४७५ ६८५
जिला-दतिया (म.प्र.)

५. श्री अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन
सी-99, गली नं. 4 पहला पुस्ता न्यू उस्मानपुर
निकट जैन मन्दिर, दिल्ली-110053
मो. : 98104874

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण व्यवस्था –
जैन कम्प्यूटर्स,
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302 015
मोबाइल : 9414717816, 8619975965
e-mail:
jaincomputers74@gmail.com

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् स्वामीजी का सी. डी.व सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, मासिक विधान आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य ५१००१/- में, शिरोमणि संरक्षक सदस्य ३१००१/- में तथा परम संरक्षक सदस्य २१००१/- संरक्षक सदस्य ११००१/- में एवं परम सहायक सदस्य ५००१/- बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से २९ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) इत्यादि ३९ पुष्पों में लगभग ७ लाख २८ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

प्रस्तुत संस्करण में आद्य चक्रवर्ती सम्राट भरत के जीवन चरित्र को बहुत ही सुन्दर रीति से संक्षिप्त में भरतेश वैभव के मूलभाव को सुरक्षित रखते हुए पण्डित श्री ऋषभजी शास्त्री उस्मानपुर दिल्ली मधुर एवं सरल बोधगम्य शैली में प्रस्तुत किया है। अत: हम उनके विशेष आभारी हैं। इसका सम्पादन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम उनके भी आभारी हैं।

इन कथा-कहानियों का लाभ बाल युवा वृद्ध सभी वर्ग के लोग ले रहे हैं, यही इनकी उपयोगिता तथा आवश्यकता सिद्ध करती है। इसी कारण इनकी निरन्तर मांग बनी हुई है।

आशा है इसका स्वाध्याय कर सभी पाठक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे। साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक, संरक्षक एवं परम सहायक सदस्यों के रूप में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

पं. अभय जैन शास्त्री
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

पुस्तक प्राप्ति, सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्रमांक 10743382296 IFSC-SBIN0000524 एवं आई डी बी आई खाता क्रमांक 526100100004648 IFSC-IBKL0000526 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9424111488 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

विनम्र आदराञ्जली

जन्म
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

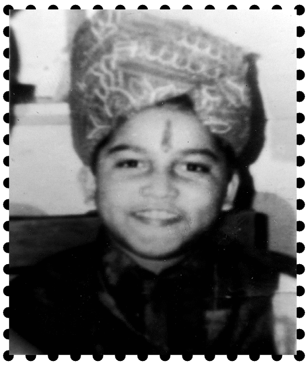

स्वर्गवास
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे – ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

साहित्य प्रकाशन फण्ड

1100/- रुपये देनेवाले

श्री मोहनलालजी किशोर कोठारी ह. विपुलजी दुर्ग,

गुलाबबाई कतरेला भिलाई

एक मुमुक्षु बहन भिलाई, चंद्रकला बैन भिलाई

श्रीमती लता अभयकुमार जैन शास्त्री देवलाली

श्रीमती राजकुमारी जैन डोंगरगढ़, श्री जयकुमार सौरभ जैन डोंगरगढ़

1000/- रुपये देनेवाले

श्रीमती कंचनदेवी दुलीचंद खैरागढ़, श्रीमती चंद्रकला प्रेमचंद जैन खैरागढ़

झनकारीभाई खेमराज बाफना चैरिटेबल ट्रस्ट खैरागढ़

ब्र. ताराबाई ब्र. मैनाबाई जैन सोनगढ़, सौ. शोभादेवी मोतीलाल जैन खैरागढ़

चंद्रा भूरा भिलाई, श्रीमती बीणाबेन सुरेशकुमार राजनंदगांव

स्व. किरणदेवी हस्ते धर्मिष्ठा सुराना दुर्ग, श्री शरदकुमार संजयकुमार जैन डोंगरगढ़

500/- रुपये देनेवाले

श्री मोतीलाल फलेजिया अहमदाबाद, श्रीमती क्षमा योगेश जैन धमतरी

श्रीमती सुवर्णा प्रदीपकुमार जैन खैरागढ़, श्रीमती श्रद्धा-शुद्धामप्रकाश विदिशा

श्रीमती समता/नम्रता जैन कानपुर/सोनगढ़, पद्मा जैन चोपड़ा भिलाई

श्रीमती पूजादेवी सिद्धेशकुमार राजकोट, शांतिबाई जैन बुरड़ दुर्ग

श्रीमती सुरभि-एकत्व पुजारी खनियाँधाना, श्रीमती पूजा साकेत शास्त्री बड़वानी

श्रीमती गुलाबबाई पन्नालाल छाजेड़ खैरागढ़, ऊषा जैन भिलाई

श्रीमती आंचल-निश्चल जैन हस्ते सरला जैन खैरागढ़

स्व. मन्नूबाई मोहनलालजी श्रीमाल खैरागढ़

अबतक प्रकाशित एवं प्रचारित

चौबीस तीर्थंकर महापुराण

(हिन्दी-गुजराती) एवं

जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से २९

तथा अन्य लगभग **७ लाख २८ हजार प्रतियाँ**

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खाटड़ीया
पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, ह. सरिता बेन तेजपुर
श्री निर्मलजी बरडिया स्मृति प्रभा जैन राजनांदगांव

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसीभाई कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो ह. शीतल विजेन, लन्दन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड

परमसंरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट,खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन तत्त्वप्रचार समिति, दादर
पीनल बेन प्रकाशभाई संघवी, घाटकोपर
मीताबेन परिवार बोरीबली
श्रीमती समता–अमितकुमार जैन, कानपुर
श्रीमती पुष्पा बेन रायसीभाई गाड़ा, घाटकोपर
धरणीधर हीराचंद दामाणी, सोनगढ़
श्रीमती रीमा-विकाश सेठी अंधेरी ह. बेलाबेन सोनी

संरक्षक सदस्य

श्रीमती विमलाबाई सुरेशचंद जैन, कोलकाता
स्व. अमराबाई-घेवरचंद ह. नरेन्द्र डाकलिया, नांदगांव
श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई, बम्बई, प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई नेपाल, श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद
श्रीमती स्नेहलता ध.प. जैनबहादुरजी जैन, कानपुर
श्रीमती सुशीलाबाई उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
श्री तुषार नलिनकांत देसाई, पालड़ी
श्री ज्योत्सना बेन भूपतभाई शाह, देवलाली

परम सहयोगी सदस्य

श्रीमती चेतनाबेन पारुलभाई भायाणी, मद्रास
श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्रीमती स्वाति-आशीष जैन, नवसारी
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता

स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी, उज्जैन
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल, जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, अहमदाबाद
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, ह. श्री दिलीपभाई बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री चेतना महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व.गैंदामल ज्ञानचन्द सुमतप्रसाद अनिल जैन, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. सरला जैन, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्रीमती श्रुति-अभयकुमार शास्त्री, खैरागढ़
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
श्रीमती नम्रता-प्रशम मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर
श्रीमती वर्षाबेन-निरंजनभाई, सुरेन्द्रनगर
श्रीमती रूवी-राजकुमार जैन, दुर्ग
श्रीमती विजया विजयकुमार जैन, विलासपुर
स्व. धरमचंद संचेती ह. किशोरकुमार संचेती, कटंगी
श्रीमती नेहाबेन-जितेन्द्र भाई गोगरी, माटुंगा
श्रीमती लक्ष्मीबेन शशांकभाई शाह, माटुंगा
श्री जयकुमार जैन, शिवपुरी
श्रीमती सुशीला बेन जयन्ती लाल गाला, माटुंगा
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
लक्ष्मी बेन, ब्र. कुन्ती बेन, सोनगढ़
कु. आरोही, श्रीमती परींदा-राहुल पारिख, न्यूजीलेण्ड
कु. श्रेया श्रीमती मीता-दीपक पारिख, मुम्बई

भरत से भगवान : एक यात्रा

भूमिशुद्धि दिवस

सर्वप्रथम इस काव्य के महानायक, इस युग में हुए आदि तीर्थंकर राजा ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र, इस युग के प्रथम चक्रवर्ती, भगवान भरत को मैं वन्दन करता हूँ। पश्चात् ......

हम आपको ले चलते हैं आज से लगभग एक कोड़ा-कोड़ी सागर पूर्व, तृतीय काल के अंत में जहाँ अभी कुछ समय पहले ही कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ है। प्रथम तीर्थंकर का शासन है और प्रथम चक्रवर्ती का राज्य है। कथा कहने से पहले पाठकगणों से निवेदन है कि वे यह ना देखें कि कथा-वाचक कौन है, अपितु यह देखें कि कथा का नायक कौन है।

विश्वास है कि ''भरत से भगवान'' बनने की यह कहानी सभी को आनन्दित करेगी, रागी को वैरागी और वैरागी को वीतरागी बनने में सहायक होगी। जिस कथा के नायक स्वयं चक्रवर्ती हों, उस कथा का वाँचन तो आनन्दमयी ही होगा। तद्भव मोक्षगामी, महापुरुषार्थी, गृहस्थी में भी वैरागी भरतजी का वर्णन करने में कौन समर्थ है? फिर भी भव्यजीवों के भाग्य से यह वर्णन स्वयमेव हो रहा है।

शूरवीर, पराक्रमी, चक्रवर्ती, सम्राट भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ। इससे पहले इसका नाम नाभिखण्ड था। भारतवर्ष का अर्थ है—भरत का क्षेत्र।

शिवपुराण के अनुसार:-

नाभेः पुत्रश्च वृषभो वृषभात् भरतोऽभवत्।
तस्य नाम्ना त्विंद वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते।। 37/57

नाभि के पुत्र 'वृषभ' और वृषभ के पुत्र 'भरत' हुए। उन्हीं भरत के नाम से इस वर्ष (देश) को भारतवर्ष कहते हैं।

भारतदेश के समस्त नागरिक स्वयं को भारतीय कहने में गौरव का अनुभव करते हैं; किन्तु भारतीय होने का अर्थ है कि हमारा जीवन भी भरतजी जैसा वैरागी हो। उनके समान, भगवान आदिनाथ के बताये मार्ग पर चलकर हम स्वयं भगवान बनें। तभी हम सच्चे भारतीय होंगे।

भारतदेश के ही नहीं अपितु भरतक्षेत्र के महानायक भरतजी की कथा अवश्य ही **भक्त से भगवान** बनाने में समर्थ है।

आहारचर्या दिवस

भरतक्षेत्र में तीर्थंकर भगवंतों की शाश्वत जन्मभूमि अयोध्या नगरी में महाराज भरत बड़ी सहजता से राज्य का संचालन/प्रजा का पालन कर रहे हैं।

उनकी दिनचर्या में एक मुनिचर्या भी शामिल है। मुनिराजों की आहार-चर्या के समय भरतजी राज-काज आदि के सभी विकल्पों को छोड़कर समस्त राज-चिन्हों एवं राजसी-वस्त्रों को छोड़कर और शारीरिक श्रृंगारों से शून्य हो महल के द्वार पर उनके पडगाहन हेतु खड़े हो जाते हैं। हाथों में यथायोग्य कलश, गोला, अक्षत आदि द्रव्य लिये मानों कोई लौकान्तिक देव ही राजमहल के द्वार पर खड़ा होकर मुनिराजों के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हो।

प्रतीक्षा करते हुए यद्यपि अभी कुछ ही समय बीता है, परन्तु भरतजी चिन्तित होने लगे हैं, दूर-दूर तक कोई मुनिराज नजर नहीं आ रहे हैं। विचार करते हैं—कहीं आज मेरा भाग्य हीन तो नहीं है।

कहीं मुझसे कोई भूल तो नहीं हुई। जाने-अनजाने में मुनिराजों की कोई अविनय तो नहीं हो गई। जिस महल में मुनिराजों का आगमन ना हो सके वह महल कैसा? ऐसे विचारों में कुछ समय और बीत गया।

आकुलता और बढ़ने लगी किन्तु तभी आकाश में तेज प्रकाश का एक पुंज-सा दिखाई दिया। कुछ ही क्षणों में वह प्रकाश दो रूपों में दिखने लगा, मानों सूरज और चाँद ही एक साथ इस धरती पर उतर रहे हों। अरे, ये तो चारणऋद्धिधारी मुनिराज हैं। देखते ही रोम-रोम पुलकित हो गया। आज का दिवस धन्य हो गया।

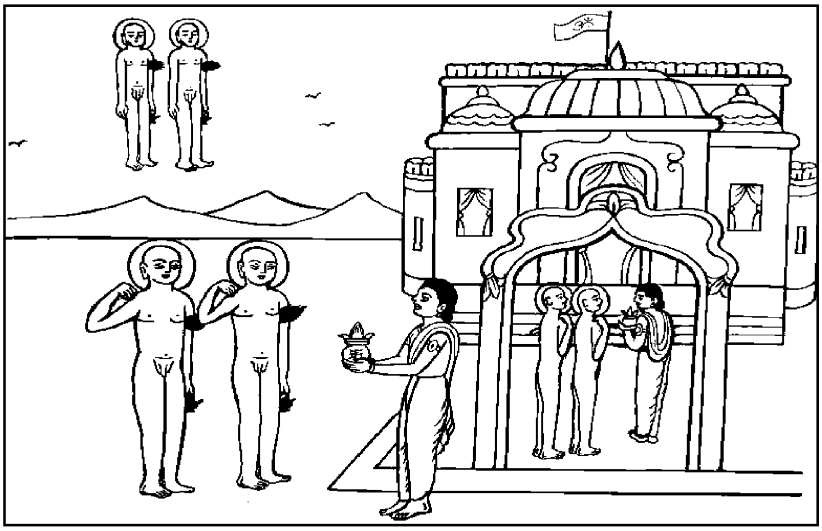

परम दिगम्बर वीतरागी सन्तों की जय हो! जय हो! जय हो! हे स्वामी अत्र-3 तिष्ठ-3। पवित्र नवधा भक्ति को देख मुनिराज-द्वय वहाँ ठहर गये। प्रदक्षिणा, पाद-प्रक्षालन, साष्टांग नमस्कार कर अति विनय-सहित मुनिराजों को महल में ले आये। विशाल महल में अनेक मोड़ हैं। मानो उन पर जाते हुए भरतजी भक्ति-वश मन ही मन कह रहे हों कि हे मुनिवर! हमारे परिणाम भी वक्र हैं और हमारा महल भी; किन्तु आपके आगमन से महल तो नहीं; परन्तु परिणाम अवश्य

अवक्र हो जायेंगे। भरतजी की सभी रानियाँ तथा महल के सभी लोग अत्यंत आनन्दित हो, मन ही मन मुनिराज की भक्ति कर रहे हैं। कोई सोच रहा है देखो तो सही कैसी वीतरागता है, कोई मन ही मन कहता है कितनी गम्भीरता है। अरे! ये तो त्याग और तप की साक्षात् मूर्ति हैं। नहीं-नहीं ये तो साक्षात् चलते-फिरते सिद्ध प्रभु हैं। इसप्रकार प्रत्येक प्राणी आज अपने को भाग्यशाली अनुभव कर रहा है।

आज चक्रवर्ती के महल में हमारा आगमन हुआ अथवा षट्खण्डाधिपति ने हमें नमस्कार किया—मुनिराजों को ऐसा कोई अभिमान नहीं। **शरीर भले ही महल में प्रवेश कर रहा हो किन्तु उपयोग तो स्वरूप में ही प्रवेश कर रहा है।**

चक्रवर्ती जैसा दातार हो तो भी मुनिराज विधि बिना आहार नहीं लेते, अत: नवधा भक्ति सहित भरतजी द्वारा आहार चर्या प्रारम्भ हुई। तपों की वृद्धि हेतु मुनिराजों ने आहार लिया। तप के प्रभाव से जहाँ नीरस भोजन भी सरस बन जाता है, वहाँ चक्रवर्ती के उत्तम आहार का क्या वर्णन करें? उत्तम पात्र, उत्तम आहार और उत्तम दातार यह सुमेल दर्शनीय हो रहा है। धरती पर देखने वालों की आँखें तृप्त नहीं हो पा रही हैं।

आकाश में देवतागण रत्नवृष्टि एवं पुष्पवृष्टि कर हर्षित होते हुए कह रहे हैं कि "हे भरतेश! तुम धन्य हो, तुम्हारी जय हो। आज आप मुनिराज को आहार दान और स्वयं को विशुद्धि दान देकर धन्य हो गये। आज तुम्हारे दानधर्म के सामने हमारा स्वर्ग का वैभव व्यर्थ दिखाई दे रहा है। मुनिराजों को आहार कराने की पात्रता हमारे पास नहीं है, अत: तुम धन्य हो।" इसप्रकार चारित्र चक्रवर्ती चारणऋद्धिधारी मुनिराजों और भरत चक्रवर्ती की जय-जयकार हो रही है।

इससे हमें यह सहज ही शिक्षा मिलती है कि " **हमें भी प्रति दिन आहारचर्या कराने की भावना होना चाहिए और योग्य विधि**

बनें तो उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्र को आहार कराके ही भोजन करना चाहिए।

मुनिराजों ने महल में उपस्थित सभी जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश दिया। पश्चात् आकाश-मार्ग से गमन किया। भरतजी ने भी कुछ कदम साथ चलकर यथायोग्य विनय सहित उन्हें विदा किया।

चतुर्दशी दिवस

आज चतुर्दशी का पावन दिवस है। भरतजी आज विशेष संयम से रहेंगे। राज-पाट से अधिक धार्मिक कार्यों में समय का सदुपयोग होगा। सर्वप्रथम स्नान करके जिनमन्दिरजी जायेंगे।

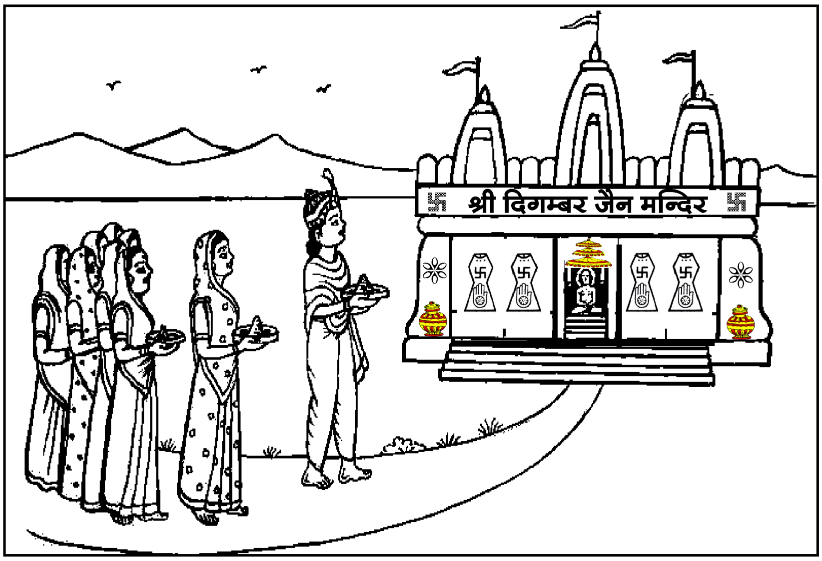

वे दो प्रकार के स्नान किया करते हैं।

1. भोग-स्नान अर्थात् सुगन्धित तेल मर्दन एवं चंदन का उबटन आदि और

2. योग-स्नान अर्थात् इन सबसे रहित अल्प प्रासुक जल से स्नान।

वे श्रृंगार भी दो प्रकार का किया करते हैं।

1. मोह-श्रृंगार अर्थात् विभिन्न आभूषणों एवं राजसी वस्त्रों से शरीर का और

2. मोक्ष-श्रृंगार अर्थात् संयम, साधना, तप, रत्नत्रय आदि से शुद्धात्मा का।

आज उनके योग स्नान एवं मोक्ष-श्रृंगार का दिन है। भरतजी नंगे पाँव एवं दुग्ध से धवल धोती-दुपट्टा पहने मणियों की थाली में रत्नों के द्रव्य लिये जिनमन्दिरजी जा रहे हैं। साथ में उनकी सभी रानियाँ भी पूजन के लिये गमन कर रही हैं। स्वर्ग की अप्सराओं की तरह दिखने वाली रानियाँ आज सफेद वस्त्रों में ऐसी लग रही हैं, मानों आर्यिकाओं का समूह ही जा रहा है।

''वर्तमान में आज बहुत ही सज-धज कर, मन्दिर जाने की होड़ सी विकसित होती जा रही है, खासकर दशलक्षण, दीपावली, महावीर जयन्ती आदि पर्वों के अवसरों पर; **हमें भरतजी एवं उनकी रानियों से यह प्रेरणा लेकर सादगी पूर्ण वस्त्रों में ही जिनमन्दिर जाना चाहिए। ऐसा नहीं है कि भरतजी के घर में कोई कमी थी, चक्रवर्ती के वैभव से हम सब परिचित हैं। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि हमारे वैभव प्रदर्शन का यह भाव हमें पुण्य के स्थान पर पाप का बंध कराता है, क्योंकि ऐसे परिणामों से भगवान की अविनय होती है।''**

भरतजी ने जिनमन्दिर पहुँचकर भगवान की भव्य पूजन की। पश्चात् सभी रानियों के साथ घंटों तत्त्वचर्चा एवं स्वाध्याय किया; फिर वे सामायिक में बैठकर अपने स्वरूप में विचरण करने लगे। इसप्रकार जिनदर्शन और निजदर्शन कर परिवार सहित महल में प्रवेश करते हैं। आज उनकी माता नन्दादेवी का भी उपवास है। माताजी भी सफेद वस्त्रों में महल में विराजमान हैं। सभी रानियों ने मन्दिरजी से लौटकर

माताजी के चरण स्पर्श किये। यह प्रसंग ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे संघ की सभी तपस्वी, आर्यिकायें, गणिनी माता से मोक्षसुख का आशीर्वाद ले रही हैं।

माता नन्दादेवी के भरतादि सौ पुत्र और ब्राह्मी नामकी पुत्री है। राजा ऋषभदेव की दूसरी पत्नी सुनन्दा देवी के बाहुबली पुत्र और सुन्दरी नामक पुत्री है। धन्य है यह परिवार, भरतजी स्वयं प्रथम चक्रवर्ती, भाई बाहुबली प्रथम कामदेव, अनुज अनंतवीर्य सर्वप्रथम मोक्ष का द्वार खोलने वाले और पिताश्री प्रथम तीर्थंकर।

भरतजी के छह भाई तो पहले ही पिता आदिनाथ के साथ दीक्षा लेकर चले गये हैं। शेष 94 भाई भिन्न-भिन्न राज्यों का पालन कर रहे हैं, उनमें से बाहुबली पोदनपुर का राज्य सँभाले हुए हैं। भरतजी भी सुखपूर्वक अयोध्या के राज्य का पालन कर रहे हैं।

प्रजा भी आनन्द से रहते हुए दिन-रात अपने स्वामी के लिये शुभ-कामना करती रहती है।

दिग्विजय प्रस्थान दिवस

दिग्विजय प्रस्थान दिवस के इस अध्याय को प्रारम्भ करने से पहले अपने प्रिय पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

यद्यपि यह बात प्रसिद्ध है भरत महाराज को एक दिन एक साथ तीन शुभ समाचार प्राप्त होते हैं।

पहला- श्री आदिनाथ महामुनिराज को केवलज्ञान की उत्पत्ति।

दूसरा- भरतराज को पुत्ररत्न की उत्पत्ति।

तीसरा- आयुधशाला में सुदर्शन चक्र की उत्पत्ति।

अत: हमें ऐसा लगता है कि उन्होंने एक ही दिन में तीनों उत्सवों को सम्पन्न किया होगा, परन्तु कुछ साक्ष्यों पर विचार करने से यह

भलीभाँति प्रतीत होता है कि फाल्गुन कृष्णा एकादशी को श्री आदिनाथ मुनिराज को कैवल्य की प्राप्ति हुई। फाल्गुन सहित चैत्र, वैशाख, जैष्ठ तो भगवान के केवलज्ञान महोत्सव एवं पुत्र जन्मोत्सव मनाने में व्यतीत हुए होंगे। पश्चात् आषाड़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन के २० दिनों में बरसात का विशेष असर होने से दिग्विजय हेतु प्रस्थान नहीं हुआ होगा, अत: शुभ मुहूर्त निकला आश्विन शुक्ला दशवीं का, इसके पूर्व आश्विन शुक्ला एकम् से नववीं तक भरतराज ने अयोध्या के जिनमंदिरों में बड़े ही धूम धाम से उत्साह पूर्वक भक्ति-पूजा आराधना आदि का अनुष्ठान किया, जिसमें पूरे अयोध्या-वासियों ने तो बढ़-चढ़ कर भाग लिया ही, देशभर में भी एक अनुपम धार्मिक वातावरण निर्मित हो गया। तभी से यह आश्विन शुक्ला दशवीं की तिथि विजयादशमी के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

'भरत का अन्तर्द्वन्द्व' नामक अपनी कृति में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल लिखते हैं कि "यह विजय यात्रा किसी को हराने के लिए नहीं की गई थी, बल्कि यह तो वास्तव में प्रजा के सर्वतोन्मुखी विकास हेतु किया गया एक सुन्दर अभियान था, जिसमें भरतराज के नेतृत्व में जनता को उत्तम शिक्षाएँ दी जा रहीं थीं, कर्मभूमि के योग्य संस्कार दिए जा रहे थे। उन्हें अंकलिपि, कृषि, वाणिज्य आदि सभी आवश्यक कार्यों की शिक्षा दी जा रही थी। सम्पूर्ण देश को संगठित करके उसका विकास किया जा रहा था। इसका प्रमाण यह है कि पूरी दिग्विजय में कहीं किसी का एक बूंद भी खून नहीं बहा था।" इस विषय की विस्तृत जानकारी के लिए उनकी यह अनुपम कृति मूलत: पठनीय है।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि इस विजया दशमी का सम्बन्ध राम की विजय और रावण की पराजय से अधिक भरतराज की विजय यात्रा से संबन्धित प्रतीत होती है।

इसप्रकार नौ दिन की महापूजा के उपरान्त भरतराज ने दशमी को वीरलग्न के शुभ-मुहूर्त में चक्र-रत्न एवं भारी सेना के साथ दिग्विजय हेतु प्रस्थान किया। भरतेश वैभव में उपलब्ध इस विवरण से प्रतीत होता है कि विजयादशमी का यह पर्व सर्वप्रथम भरत चक्रवर्ती ने मनाया था और तभी से आज तक यह लोक में प्रचलित रहा है।

इससे यह भी ज्ञात होता है कि विजयादशमी भी मूलत: एक जैनपर्व रहा है और कालान्तर में जैनों द्वारा उपेक्षित होकर मात्र हिन्दुओं का कहलाने लग गया है।

हमारे उक्त मत की पुष्टि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के इतिहास विभाग के सेवानिवृत्त आचार्य प्रो. योगेशचन्द्र शर्मा के ''रामकथा के कुछ विवादस्पद प्रसंग'' नामक शोधपत्र से भी होती है, जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया है कि दशहरा-दीपावली का रामकथा से कोई सम्बन्ध नहीं है, इन त्योहारों की लोकप्रियता के कारण ही सम्भवत: कालान्तर में इनके साथ रामकथा को जोड़ दिया। यथा-

''सामान्य जनधारणा यह है कि रावण की मृत्यु विजयादशमी को हुई तथा उसके बाद दीपावली के दिन राम वापिस अयोध्या लौटे थे, तथ्यों को देखते हुए ये दोनों ही बातें गलत प्रतीत होती हैं।

रामायण के अयोध्या काण्ड, तृतीय सर्ग-4 के अनुसार मूलत: राम का राज्याभिषेक चैत्र मास में होना तय हुआ था और उसी माह उन्हें चौदह वर्षों के लिए वनवास जाना पड़ा था। इसके अनुसार चौदह वर्ष भी चैत्र मास में ही पूरे होते हैं, आश्विन या कार्तिक में नहीं। रावणवध भी चैत्र में ही हुआ था। रावणवध के बाद उसकी अंत्येष्टि तथा विभीषण के राज्यारोहण में थोड़ा ही समय लगा, क्योंकि राम को भरत की चिन्ता हो रही थी। उधर वनवास की अवधि भी पूरी होंने को थी और उन्हें निश्चित समय पर अयोध्या पहुँचना था, अन्यथा भरत के प्राण त्याग देने की आशंका थी, इसलिए राम ने विभीषण

के इस आग्रह को भी स्वीकार नहीं किया कि वे कुछ दिन लंका का आतिथ्य स्वीकार करें। तब विभीषण ने उन्हें पुष्पक विमान से भेजा, जिससे वे भारद्वाज आश्रम में पहुँचे। वह दिन चैत्र शुक्ल पंचमी का था। इसप्रकार चैत्र में ही रावणवध हुआ और इसी माह में राम वापिस अयोध्या आ गये। इस घटना से यही प्रतीत होता है कि दशहरा तथा दीपावली का रामकथा से कोई सम्बन्ध नहीं है, इन त्योहारों की लोकप्रियता के कारण ही सम्भवत: कालान्तर में इनके साथ रामकथा को जोड़ दिया गया।''

– वैचारिकी त्रैमासिक शोध पत्रिका, मार्च-अप्रेल २०१३ पृष्ठ २२ भारतीय विद्यामन्दिर कोलकाता से साभार

खैर, जो भी हो यह इतिहास का विषय है, हम तो अपने कथानायक की कथा को आगे बढ़ाते हैं।

एक दिन राजसभा में भरतजी के कुशल महामन्त्री बुद्धिसागर ने निवेदन किया कि महाराज आयुध-शाला में सूर्य-समान सुदर्शन नामक चक्र-रत्न प्रगट हो गया है। अब आप अन्य सभी कार्यों से विराम लेकर दिग्विजय की तैयारी करें। सम्पूर्ण भरतक्षेत्र के उत्तम पदार्थ आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप भरतक्षेत्र पर विजय प्राप्त करें; इसी से आपका नाम भरत सार्थक होगा।

मन्त्री के समयोचित निवेदन को सुनकर भरतजी बहुत प्रसन्न हुये और आज्ञा दी कि शुभ मुहूर्त में दिग्विजय हेतु प्रस्थान की तैयारी की जाये। वह शुभ दिन अश्विन शुक्ल दशमी का निश्चित किया गया।

हाथी, घोड़े, रथ आदि को सजाया जाने लगा। बारह कोस के विस्तार वाली अयोध्या नगरी में चारों ओर चहल-पहल है। प्रस्थान की तैयारियाँ जोरों से चल रही हैं।

आज अश्विन शुक्ल दशमी का शुभ दिन है। आज भरतजी दिग्विजय के लिये प्रस्थान करेंगे। सम्राट सभी शृंगारों से सुसज्जित

हो सर्वप्रथम माता यशस्वती के दर्शन करने के लिये उनके महल में पहुँचते हैं। माता को प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद और आज्ञा के लिये विनती करते हैं।

माता :- पुत्र! क्या आज ही तुम्हारा प्रस्थान होना निश्चित है?

भरत :- हाँ मातुश्री! मैं शीघ्र ही पुनः आपके चरणों का स्पर्श करूँगा। दिग्विजय का समाचार पाकर स्वयं बाहुबली ने अपने मन्त्री प्रणयचन्द्र के द्वारा सन्देश भेजा है कि वह शीघ्र ही आपको पोदनपुर ले जायेगा। देखो तो सही बाहुबली का मातृ-प्रेम और उसका विवेक। मेरी अनुपस्थिति में आपको कोई कष्ट ना हो इसलिये जब तक मैं दिग्विजय से वपिस न आ जाऊँ, तब तक आप बाहुबली के पास रहें।

यहाँ उपस्थित भरतजी की सभी रानियों ने भी सासू माँ के चरण स्पर्श किये तथा माता से आशीर्वाद एवं सदुपदेश देने की विनती की।

माता :-देवियो! स्वप्न में भी तुम्हें कभी कष्ट ना हो और सभी आनन्द के साथ वापिस आना तथा सदा पंच-परमेष्ठी का स्मरण रखना। आप सभी विवेकी हैं; इसलिये आपके सम्बन्ध में मुझे कोई चिन्ता नहीं। सकुशल पति के साथ दिग्विजयी होकर आयें। अस्तु!

रानियाँ :- माताजी! अब हमें प्रतिदिन आपके चरण-स्पर्श का अवसर नहीं मिलेगा; **अतः जब तक पुनः आपके दर्शन ना हों तब तक हमारा कोई-ना-कोई नियम है।**

पहली रानी :- मेरा दूध का त्याग है।

दूसरी रानी :- मेरा घी का त्याग है।

तीसरी रानी :- मेरा रंगीन वस्त्रों का त्याग है।

इस प्रकार सभी रानियों ने अनेक प्रकार के व्रत लिये। ये सब नियम हैं; यम नहीं; ज्ञातव्य है कि **नियम निश्चित काल के लिए**

और यम आजीवन के लिये होते हैं। बहुओं की भक्ति देखकर माता को अपार हर्ष हुआ। माता की आज्ञा लेकर भरतजी और रानियाँ आदि सभी महल से बाहर आये। महल के द्वार पर हाथी, घोड़े पयादे महामन्त्री सेनापति आदि सभी तैयार हैं।

आदिजिन-पुत्र आपकी जय हो! कामदेवाग्रज आपकी जय हो!! इसप्रकार चारों दिशाओं में जय-जयकार होने लगी। विजयगिरि नामक गज-रत्न पर भरतजी और सोने की पालकियों पर सभी रानियाँ शोभायमान हैं। सेनापति के इशारे पर सेना ने प्रस्थान प्रारम्भ किया। उसी समय आकाश में एक गरुड़ और धरती पर एक जानवर अत्यन्त भयभीत होकर भागता दिखाई दिया। उसे देखकर नागरांक मन्त्री ने कहा— महाराज! शत्रु आपसे भयभीत होंगे-इसकी यह सूचना है।

एक सेवक वज्रमयी मोतियों से सजा छत्र उठाये हुए है। दोनों ओर मिलाकर कुल बत्तीस राजागण चँवर डुला रहे हैं। चारों ओर लाखों ध्वज-पताकायें लहरा रही हैं। जहाँ तक दृष्टि जाये वहाँ तक भरतजी का वैभव और सेना ही दिखाई दे रही है।

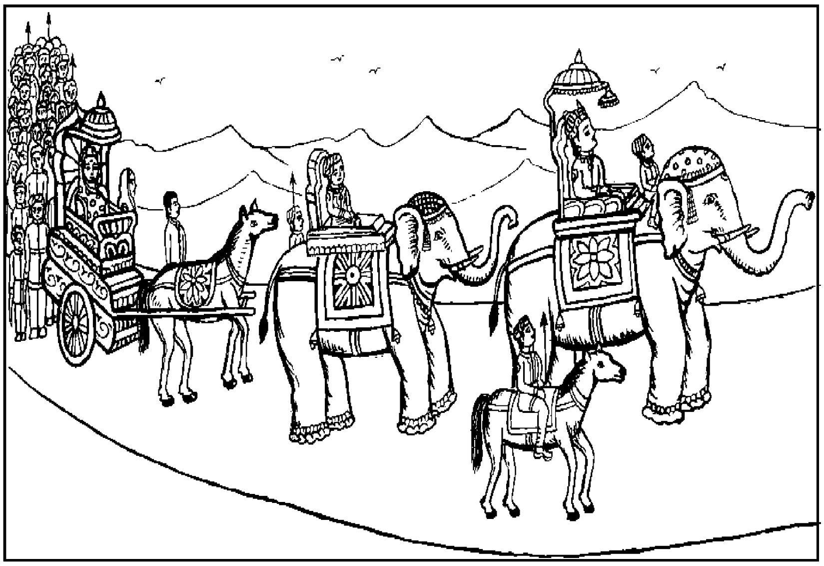

आज अयोध्या-नरेश दिग्विजय के लिये जा रहे हैं। उनकी शोभा को देखने के लिये सभी नगरवासी सड़कों पर, झरोखों पर खड़े हैं। पहले मैं, पहले मैं की होड़ लगी हुई है। आज भरतजी के सौन्दर्य का क्या वर्णन करें? जो भी देखे या तो आँखें अपलक ठहर जायें अथवा मुँह खुला का खुला रह जाये।

इसप्रकार भरतजी धीरे-धीरे अयोध्या नगरी के राजमार्गों से बहुत वैभव के साथ गमन करते हुए नगर से प्रस्थान कर गये।

भरतजी का सेनापति जयराज, बहुत विवेकी, महाकुशल और बुद्धिमान है। इस सेनापति के इशारे पर अयोध्या से कुछ दूर राज-दरबार लगा। वहाँ अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ आर्यखण्ड के सभी राजाओं ने आकर भरतेश को नमस्कार किया। अर्थात् आर्यखण्ड के सभी अधिपतियों ने सम्राट् की अधीनता को स्वीकार किया। अब शेष पाँच म्लेच्छ खण्डों पर विजय प्राप्त करने के लिये सेना ने आगे गमन किया।

इस सेना में, अपनी चाल से पर्वतों को भी भेदने वाले चौरासी लाख रथ हैं; चौरासी लाख हाथी हैं, अनेक शुभ लक्षणों से सहित अठारह करोड़ घोड़े हैं, चौरासी करोड़ क्षत्रिय वीर योद्धा हैं और व्यंतर कुल में उत्पन्न महाबलशाली एवं वैभवशाली बत्तीस हजार देव हैं, जो कि अंगरक्षक बनकर दिन-रात भरतजी की सेवा में रहते हैं तथा सभी आश्रित राजागण अपने सम्पूर्ण वैभव एवं सेना सहित उनका अनुकरण करते हुए आगे बढ़ रहे हैं।

बीच-बीच में अनेक स्थानों पर विश्राम करते हुए सेना गंगा नदी की ओर प्रस्थान कर रही है। नदी के दक्षिण में उपलवण नाम का समुद्र है। यहाँ पहुँचने पर सूर्य पर्वतों के पीछे छिपने लगा। भरतजी की आज्ञा से सम्पूर्ण सेना का यहाँ पड़ाव हुआ।

36 योजन चौड़ी, 40 योजन लम्बी विशाल सेना के लिये

विश्वकर्मा-रत्न ने सभी की योग्यतानुसार मनोहारी महलों का निर्माण किया। अश्वशाला, गजशाला, रानियों के निवास, शयनकक्ष, जिनमन्दिर आदि सभी की रचना क्षणमात्र में हो गई। सभी ने अपने-अपने महलों में विश्राम किया।

सूर्योदय होने पर भरतजी एवं सभी रानियाँ जिनमन्दिर दर्शन करने गये। पूजन, स्वाध्याय, सामायिक से निवृत्त होकर भरतजी राज-दरबार में पधारे। बुद्धिसागर महामन्त्री ने अवगत कराया कि **पूर्व दिशा के समुद्र का अधिपति मागधामर नामक व्यंतर है।** वह बहुत वीर है और बहुत क्रोधी भी है। आगे गमन करने से पहले उसे वश में करना जरूरी है। भरतजी बोले— ठीक है, हम कल देखेंगे, आज सभा को यहीं विराम दिया जाये।

मागध विजय दिवस

दूसरे दिन चक्रवर्ती ने समुद्र के किनारे खड़े होकर अमोघ नामक धनुष बाण तान दिया। उसकी भयंकर गर्जना से समुद्र भी दूध की भाँति उफनने लगा। मागधामर की देव-प्रजा भयभीत होने लगी। वह बाण मागधामर के दरबार में जाकर गिरा। उपस्थित सभा काँपने लगी। बाण के साथ आये पत्र को पढ़ने की आज्ञा दी गई। जिसमें लिखा था कि षट्खण्डाधिपति प्रथम चक्रवर्ती भरतराज की ओर से आदेश दिया जाता है कि कल तक हमारी सेवा में उपस्थित हो।

इस आदेश को सुनते ही मागधामर क्रोध से लाल हो कहने लगा कि यह किस अभिमानी का कार्य है? क्या वह हमारी वीरता को नहीं जानता है? शीघ्र युद्ध की तैयारी की जाये। उसके समीप सिंहासन पर बैठे महामन्त्री ने धीरे-धीरे समझाने का प्रयास किया। महाराज आप शान्त हो जायें, थोड़ा गम्भीरता से विचार करें।

भरतजी कोई सामान्य सम्राट नहीं हैं। वे देवाधिदेव प्रथम तीर्थंकर के पुत्र हैं। अपार सम्पत्ति के स्वामी हैं। उनको इस धरती पर किसी

का भय नहीं है। उनका जन्म तो छह खण्ड का स्वामी होने के लिये ही हुआ है। वह इतना वीर है कि विजयार्ध पर्वत के वज्रमयी कपाट को मिट्टी के घड़े के समान क्षणभर में तोड़ देगा।

ये उसकी वीरता का प्रमाण है कि अपने बाण को आपके दरबार में गिरने की आज्ञा दी तो दरबार में गिरा। यदि अपने शत्रु का प्राण हरने की आज्ञा दी होती तो क्या प्राण नहीं ले सकता था। विचार करो! जो व्यक्ति बाण के साथ पत्र भेज सकता है; क्या वह मृत्यु नहीं भेज सकता? सामने वाले की और अपनी शक्ति का विचार करके ही युद्ध करना चाहिये।

धीरे-धीरे मागधामर को बात समझ में आने लगी और क्रोध शान्त होने लगा।

राजन्! वे आदि तीर्थंकर के ज्येष्ठ पुत्र हैं। तद्भव मोक्षगामी हैं। उनका विरोध करने वाला इस धरती पर कोई नहीं है। ऐसी अवस्था में उन्हें नमस्कार करने में हमारी दीनता नहीं; अपितु चतुराई है। ऐसे हित-मित वचनों को सुनकर मागधामर को पूर्ण विश्वास हुआ कि भरतेश सचमुच में असाधारण वीर पुरुष है। उसे जीतना असम्भव है; अत: सभा में घोषणा की कि कल हम भरतजी की शरण में जायेंगे।

दूसरे दिन विचारशील मन्त्री और प्रभावशाली सेनापति के साथ मेरू के समान अचल और समुद्र के समान गम्भीर भरत जी स्वयं दरबार में विराजमान हैं। मन्त्रणा हो रही है। थोड़ी देर बाद कुछ गाजे-बाजे के शब्द सुनाई देने लगे। आकाश में ध्वज-पताकायें और विमान आदि भी दिखाई देने लगे। यह कोई और नहीं अपितु मागधामर ही अपने छत्र, चँवर आदि वैभव के साथ भरतजी की शरण में आ रहा है।

आकाश से ही भरतजी की सम्पूर्ण सेना एवं वैभव को देख रहा है। अगणित हाथी, घोड़े, रथ आदि को देखकर वह दंग रह गया।

दरबार में जाकर तो एकदम कुछ क्षणों के लिये पत्थर की मूर्ति बनकर रह गया। फिर धीरे-धीरे बहुत विनय के साथ स्वामी के पास सेवक की भाँति पहुँचा। समीप पहुँचकर मागधामर ने भरतजी की स्तुति एवं प्रशंसा की तथा बहुमूल्य उपहार आदि भेंट में दिये। चक्रवर्ती ने भी उसे बैठने के लिये उचित सिंहासन की ओर इशारा किया।

बुद्धिसागर मन्त्री ने कहा कि स्वामी! मागधामर सज्जन है, वीर योद्धा है और श्रेष्ठ है; अत: आपकी सेवा में आने योग्य है। भरतजी ने कहा- हम इनके गुणों से और इनके सेवा-भाव से प्रसन्न हैं। अगले दिन की आगामी योजनाओं की चर्चा-वार्ता के पश्चात् मागधामर ने भरतजी को नमन करते हुए कहा कि महाराज मुझे आज्ञा दें। मैं कल पुन: आपकी सेवा में आऊँगा। सम्राट भी ऊँ नम: सिद्धेभ्य: कहते हुए उठे और सभा को विराम दिया।

अत्यन्त रमणीय एवं मनोहारी समुद्र के किनारे सेना ने छह माह तक प्रवास किया। सेना पूर्व समुद्र के अधिपति मागधामर की सेना-सहित पुन: विशाल, दक्षिण दिशा के समुद्र की ओर प्रस्थान कर रही है। मार्ग में सभी रमणीय स्थानों का आनन्द लेते हुए सेना आगे बढ़ रही है। कई मुकामों के बाद सेना दक्षिण समुद्र के तट पर पहुँची। तत्काल पूर्व की भाँति महल, नगर, जिनमन्दिर आदि की व्यवस्था हो गई। **इस समुद्र का अधिपति शूरवीर वरतनु नाम का व्यंतर है।** भरतजी ने इसको भी मागधामर व्यंतर के सहयोग से सरलता से जीत लिया। इधर भरतजी के पुत्र अर्ककीर्ति, आदिराज एवं वृषभराज भी बड़े हो रहे हैं। उनके खेलने-खाने एवं विद्या-अध्ययन आदि की व्यवस्था भी साथ में हो रही है। समय-समय पर अनेक मन्त्रों द्वारा पुत्रों की संस्कार-विधि कराई जाती है।

पूर्व एवं दक्षिण समुद्र के अधिपतियों को वश में करने के बाद सम्राट ने पश्चिम दिशा की ओर चलने का विचार व्यक्त किया।

प्रस्थान भेरी के शब्द से सम्पूर्ण भरतक्षेत्र गुंजायमान हो गया। सेना ने पश्चिम की ओर प्रस्थान किया। अनेक मुकामों के पश्चात् भरतजी पश्चिम समुद्र के तट पर पहुँचे। जिस समुद्र पर प्रभास नामक देव का राज्य है। वह बहुत सज्जन स्वभाव का है। मागधामर व वरतनु के द्वारा प्रभास का परिचय प्राप्त करके ध्रुवगति और सुरकीर्ति को आज्ञा दी कि तुम लोग प्रभास देव को हमारी आज्ञा में लेकर आओ। दोनों ने आज्ञा को स्वीकार किया और रवाना हुए। पश्चात् मन्त्री, सेनापति आदि सभी ने विश्राम किया।

भरतराज को अवसर मिला और वे विचार करने लगे कि यह उपलब्ध विपुल भोग-सामग्री कर्मोदयजनित है इसमें मेरा क्या है ? इसलिए वे इन भोगों को सदा ही अनिच्छापूर्वक भोगते, उनके मन में इन भोगों से मुक्त होने की भावना सदा जागृत रहती, थोड़ा-सा अवकाश मिलते ही वे आत्मस्वरूप के चिन्तन में लीन हो जाते थे। उन्हें आत्मानुभव में जिस आनन्द की अनुभूति होती थी, वैसी अनुभूति भोगों में नहीं होती थी। वे भोगों को खुजली का रोग समझते थे। जब तक खुजाया, तब तक थोड़ा सुख प्रतीत हुआ, किन्तु वह रोग पापमूलक है, पाप परिणामी है, उसका अन्त दु:ख ही है।

वे सोचते थे- **इस नश्वर शरीर के सुख के लिये नश्वर साधन जुटाते हैं, उनसे सुख भी नश्वर मिलता है** और फिर उसका परिणाम दु:ख होता है। **आत्मा शाश्वत है, अतः उसका सुख भी शाश्वत है।** वह सुख निरालम्बी दशा में ही मिल सकता है। शरीर का आलम्बन करके शरीर का क्षणिक सुख तो मिल सकता है, आत्मा का सुख उससे कैसे मिलेगा? आत्मा का सुख तो आत्मा के आलम्बन से ही मिल सकेगा। जिन्हें वह आत्म-सुख पूर्ण रूप से प्राप्त हो चुका है, उनके स्मरण से आत्मसन्मुखता की प्रेरणा मिल सकती है।

-ऐसा विचार कर भरत सदा आत्मोन्मुखता का अभ्यास करते

रहते थे। जब उनका उपयोग आत्मोन्मुख न होकर बहिर्मुख रहता, तब तीर्थंकरों का स्मरण करने लगते थे। भगवान का स्मरण करने में असावधान न हो जायें, इसके लिये उन्होंने कुछ ऐसे उपाय किये थे, जिससे उन्हें भगवान का ध्यान, स्मरण और वन्दन का स्मरण बना रहे। उन्होंने अपने महलों के द्वारों पर, कक्षों, प्रकोष्ठों में रत्न निर्मित चौबीस घण्टियों की वन्दनमाला बनवा कर लगवा रखी थी। जब वे उन द्वारों में से निकलते थे तब उनके सिर से टकरा कर वे घण्टियाँ शब्द करती थीं। घण्टियों की आवाज सुन कर भरत को चौबीस तीर्थंकरों का स्मरण हो आता था, जिससे वे उन्हें तत्काल परोक्ष नमस्कार करते थे।

हरिवंशपुराण में आचार्य जिनसेन ने भरत की इन वन्दन मालाओं का वर्णन बड़े भक्तिपूरित शब्दों में किया है।

वे कहते हैं -

चतुर्विंशति तीर्थेशवन्दनार्थं शिरःस्पृशम्।
अचीकरदसौ वेश्मद्वारे बन्दनमालिकाम्।। ११२।।

अर्थात् उन्होंने चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना के लिये अनेक महलों के द्वारों पर सिर का स्पर्श करने वाली वन्दनमालायें बनवाई थीं।

रात्रि में सभी को चाँदनी रात का प्रकाश दिखाई दे रहा है तो भरतजी को चैतन्य का प्रकाश दिखाई दे रहा है। चर्म-चक्षु से भले ही चाँद-तारों में अकृत्रिम चैत्यालयों को देख रहे हों, किन्तु ज्ञान-चक्षु से वे अपने शुद्धात्मा को देख रहे हैं। कीचड़ में रहने वाला कमल, सूर्य से प्रेम करता है; कीचड़ से नहीं। **इसी प्रकार अखण्ड भोगों के बीच रहते हुए भरतजी, अभुक्त स्वभावी आत्मा में मग्न रहते हैं; भोगों में नहीं।**

उनके ज्ञान-वैराग्यमय जीवन का चित्रण करने वाली, किसी कवि की ये पंक्तियाँ बहुत मार्मिक हैं :-

भरतजी घर ही में वैरागी, वे तो अन-धन सबके त्यागी।
कोड अठारह तुरंग हैं जाके, कोड चौरासी सागी।
लाख चौरासी गजरथ सोहैं, तो भी भए नहिं रागी।।
तीन कोड ब्रज दो हलधर हैं, एक कोड हल साजे।
नव निधि रतन चौदह घर जाके, मनवांछा सब भागी।।
चार कोड मण नाज उठे नित, लोण लाख दश लागे।
कोड थाल कंचन मणि सोहैं, नाहिं भया कोई रागी।।
ज्यों जल बीच कमल अन्तःपुर, नाहिं भये वे रागी।
भविजन होय सोई उर धारो, सोई पुरुष बड़भागी।।

भरतजी राजसभा में अपने सिंहासन पर विराज रहे हैं। **पश्चिम समुद्र का अधिपति प्रभास देव अपनी सम्पूर्ण सेना सहित सभा की ओर प्रस्थान कर रहा है।** वह बहुत सरल स्वभावी है। सभा में प्रवेश करते हुए भरतजी के वैभव को देखकर वह आश्चर्य-चकित है। ये चक्रवर्ती हैं या कामदेव हैं? चन्द्रमा हैं या सूर्य हैं? इत्यादि अनेक विकल्प मन में उठ रहे हैं। समीप पहुँचकर भरतजी को साष्टांग नमस्कार किया। विनय-सहित चक्रवर्ती के ऊपर चाँदी के पुष्पों की वृष्टि की; अनेक रत्न भेंट में दिये और स्तुति करते हुए कहा—

''हमारा अहो भाग्य है, जो आपके दर्शन हुये और आपकी सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। मुझसे पहले मागधामर और वरतनु भाग्यशाली हुए और आज से मैं भी धन्य हो गया।''

भरतजी ने भी प्रभास देव का उचित सम्मान किया। उसी समय समाचार मिला कि महल में पाँच रानियों के पाँच पुत्रों की प्राप्ति हुई है। हर्षोल्लास पूर्वक वहीं 6 महीने तक जन्मोत्सव मनाया गया; पश्चात् वहाँ से प्रस्थान हुआ।

सेना में किसी को कोई कष्ट नहीं है। इतना भी नहीं कि किसी के पेट का पानी हिले। इतने आनन्द के साथ गमन करते हुए सेना

विजयार्ध पर्वत के पास पहुँची। कैसा है वह पर्वत! चाँदी के समान शुभ्र है। ऊँचा इतना है मानों आकाश को छू रहा हो। इसके मस्तक पर विजयार्ध देव राज्य करता है; अत: पर्वत का नाम सार्थक है इसके अतिरिक्त इस पर्वत पर किन्नर, यक्ष आदि देव भी निवास करते हैं।

इसके दक्षिण में विद्याधरों की एक सौ दस नगरी हैं। उनमें गगनवल्लभ व रथनूपुर नामक दो प्रसिद्ध नगरी हैं। जिनमें महाप्रभावशाली, बलशाली, पराक्रमी नमिराज और विनमिराज दो भाई राज्य करते हैं। ये कोई और नहीं; भरतजी के मामा कच्छ, महाकच्छ राजा के पुत्र हैं। ये सब विद्याधरों को अपने आधीन कर राज्य का पालन करते हैं। जम्बूद्वीप के हिमवन पर्वत के पद्म सरोवर से गंगा-सिन्धु दो महानदियाँ निकलती हैं। ये दो नदियाँ और विजयार्ध पर्वत, भरतक्षेत्र को छह खण्डों में विभाजित करते हैं। जिन पर विजय प्राप्त कर चक्रवर्ती षट्खण्डाधिपति बनते हैं। जो इसप्रकार हैं :—

भरतक्षेत्र के छह खण्ड

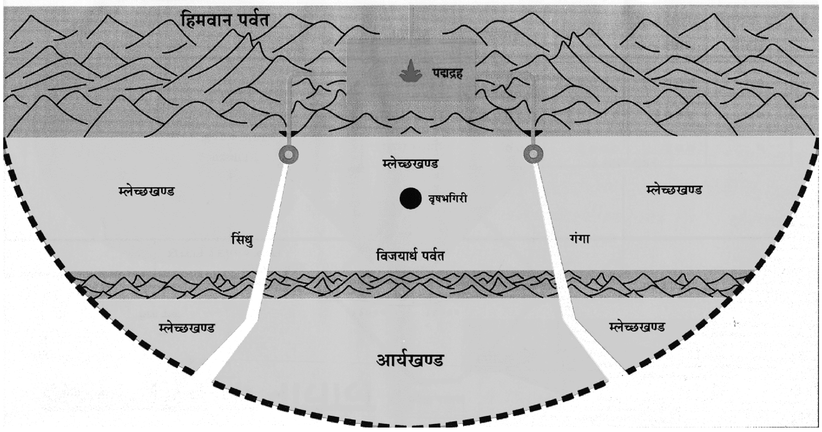

भारतवर्ष जम्बूद्वीप के दक्षिण भाग में स्थित है। इसके उत्तर में हिमवान् पर्वत है और मध्य में विजयार्ध पर्वत है। पश्चिम में हिमवान् से निकली हुई सिन्धु नदी बहती है और पूर्व में गंगा नदी, जिससे उत्तर भारत के तीन विभाग हो जाते है। दक्षिण के भी पूर्व, मध्य

और पश्चिम दिशाओं में तीन विभाग हैं। ये ही भरतक्षेत्र के छह खण्ड हैं। इन्हीं छह खण्डों को जीतकर भरतराज चक्रवर्ती पद से विभूषित होकर भरतक्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती कहलाये।

वज्रमयी कपाट उद्घाटन

अभी तक उन्होंने तीन खण्ड पर विजय प्राप्त कर ली है, अब विजयार्ध पर्वत, संबंधी तिमिस्र गुफा का वज्रमयी एक दरवाजा है। जिसे चक्रवर्ती ही खोलते हैं। चक्रवर्ती की आयु पूर्ण होने पर अथवा दीक्षा लेने पर वह दरवाजा पुनः स्वयं बन्द हो जाता है। यह द्वार हजारों, लाखों वर्षों से नहीं; अपितु पूर्व के तृतीय काल के पश्चात् नौ कोड़ा-कोड़ी सागर से बन्द है, जिसे भरतक्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती आज दण्ड-रत्न की सहायता से खोलेंगे।

जब एक लकड़ी से लकड़ी टकराकर अग्नि पैदा हो सकती है और जंगल के जंगल खाक हो सकते हैं तो दण्डरत्न से वज्र के कपाट टकराने पर कितनी विशाल अग्नि पैदा होगी। सेना का कितना नुकसान हो सकता है इसके बारे में कोई सामान्य व्यक्ति तो सोच भी नहीं सकता; परन्तु भरतजी ने सोच-विचारकर सेनाधिपति एवं व्यंतर राजाओं सहित सभी को विजयार्ध पर्वत के समीप चार योजन गहरी खाई खोदने की आज्ञा दी, ताकि उस अग्नि के प्रकोप से बचा जा सके और उसे बुझाने में सहयोग मिले। इस कार्य को पूर्ण होने में आठ दिन का समय और श्रम लगा।

पश्चात् सेनापति जयकुमार ने सूचना दी। महाराज आपकी आज्ञानुसार जल से परिपूर्ण खाई बनकर तैयार है। भरतजी प्रसन्न हुए और कहा कि कल हम वज्र-कपाट को खोलेंगे। इतने में सेनापति बोले— **महाराज आप तो कर्म-पर्वतों को भेद करमुक्तिपुरी के कपाट खोल सकते हैं; फिर इन वज्र के कपाटों को खोलना तो आपके लिये खेल मात्र है।**

भरतजी ने दण्ड-रत्न को धारण किया, अश्व-रत्न पर सवार हुए और सेना को खाई के इस ओर रहने का आदेश देकर मागधामर आदि व्यंतरों के साथ तिमिस्र नामक गुफा का दरवाजा खोलने के लिये तैयार हुये। दुष्टों की भाँति अन्दर में क्रोधाग्नि धारण करने वालों और बाहर में शान्त दिखने वालों के समान वह पर्वत दिखाई दे रहा है। आठ कोस ऊँचा, बारह कोस चौड़ा वज्र का दरवाजा है। अश्व- रत्न 12 योजन की छलांग लगाकर क्षण-मात्र में वापिस आता है। दरवाजा खुलता है। भयंकर आवाज होती है। विजयार्ध पर्वत काँप उठता है। समुद्र उमड़ता है। यह कोई साधारण दरवाजा नहीं है।

9 कोड़ा कोड़ी सागर से एकत्रित हो रही अग्नि ही मानों प्रलय-काल की अग्नि के समान एक साथ बाहर निकल रही है। विद्याधर आदि भी इस अग्नि को देखकर भयभीत हो गये। अग्नि शान्त होने पर वहाँ उत्सव हुआ **विजयार्ध पर्वत का शासन देव एवं तिमिस्र गुफा का अधिपति कृतमाल नाम का व्यंतर भरतजी की सेवा में उपस्थित हुआ।**

विजयार्ध पर्वत पर **गगन वल्लभपुर के अधिपति नमिराज और रथनूपुर के अधिपति विनमिराज हैं, जिन्हें चक्रवर्ती की वीरता को देखकर बड़ा हर्ष हुआ।** एक भाई, दूसरे भाई से वार्ता कर रहा है, जो वज्र-कपाट इतने समय से बन्द था; उसे हमारे भ्राता भरत ने क्षण-मात्र में खोल दिया; जिससे हमारे कई देश के बड़े-बड़े राजा भी पलने में झूलते बालक के समान सिंहासन से नीचे गिर गये। दोनों भाई वार्ता के पश्चात् अपने-अपने विमान पर आरूढ़ होकर भरतजी के दर्शन के लिये जाते हैं।

किसी के आगमन का आभास भरतजी को पहले ही हो जाता था; अतः दोनों भाइयों को सूचना भिजवाई गई कि दरबार में प्रथम आप दोनों भाई पधारें; पश्चात् विद्याधर राजा आदि। दोनों भाई देव-

निर्मित महल में प्रवेश करते हैं। महल की शोभा एवं सुन्दरता को देखकर वे आश्चर्य-चकित हुए। कुछ पल के लिये तो भरतजी की विनय करना ही भूल गये; फिर पास में जाकर रत्नों से भरा थाल भेंट में देकर नमस्कार किया। सम्राट ने सिंहासन की ओर बैठने का इशारा किया। दोनों ने सिंहासनों को सुशोभित किया।

भरत :- नमि! विनमि! तुम कुशल तो हो ना?

नमि :- जिस भू-खण्ड के अधिपति आदि तीर्थंकर के पुत्र हमारे भ्राता हों, वहाँ अकुशलता कैसे हो सकती है? आपके ऐश्वर्य एवं पराक्रम को देखते हुए हमारे साथ इस विजयार्ध के अनेक विद्याधर राजा अपनी-अपनी सुन्दर उत्तम कन्याओं को लाये हैं; अतः उन्हें अन्दर आने की आज्ञा प्रदान करें।

भरतजी के मन्त्री दक्षिणांक ने नमिराज के मन्त्री सुमतिसागर से सभी विद्याधरों को अन्दर आने के लिये कहा। उसी समय बहुत से विद्याधर दरबार में प्रविष्ट हुए। भरतजी की यथा-योग्य विनय करके बहुमूल्य भेंट भी दी। सभी ने निवेदन किया कि हमारी योग्य कन्याओं से विवाह कर उन्हें स्वीकार करें। भरतजी ने सहजता से स्वीकार करते हुये अगले दिन विवाहोत्सव की घोषणा की।

दूसरे दिन भरतजी ने विवाहोचित श्रृंगार किया और पूरे उत्साह के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। सभी का भोजन, वस्त्र, आभूषण एवं रत्नोपहार आदि से सत्कार किया गया।

इसप्रकार प्रतिदिन किसी ना किसी उत्सव में छह महीने बीत गये। बुद्धिसागर मन्त्री ने विनम्र शब्दों में कहा कि महाराज! यहाँ हमें 6 माह बीत चुके हैं और यहाँ तक तीन खण्डों पर विजय प्राप्त हो चुकी है। अब विजयार्ध पर्वत के आगे के शेष तीन खण्डों को जीतने के लिये यहाँ से गमन करना चाहिये। मन्त्री के निवेदन

को सुनकर भरतजी आये हुए नमिराज, विनमिराज सहित समस्त राजा, महाराजाओं को अनेक बहुमूल्य भेंट देकर यथायोग्य आदर सत्कार कर विदा करते हैं।

6 महीने के पश्चात् प्रस्थान-भेरी बजाई गई। सेना का प्रस्थान हुआ। सबसे आगे सेनापति जयकुमार, तदनन्तर व्यंतर देवों की सेना, पश्चात् गणबद्ध देवों से घिरे भरतेश्वर गुफा के रास्ते सिन्धु नदी के पार म्लेच्छ खण्ड की ओर गमन कर रहे हैं। गुफा में चारों ओर भयंकर अंधकार है; किन्तु साथ में काकिणी-रत्न भी गमन कर रहा है, जिसके कारण दिन-रात का भेद भी मालूम नहीं हो रहा है।

वहाँ भरतजी अपने अनेक रूप बनाकर चल रहे हैं। सभी रानियाँ ऐसा अनुभव कर रही हैं कि स्वामी तो मात्र मेरे साथ ही चल रहे हैं। उस भयंकर गुफा में रानियों को कोई भय ना हो; अतः तत्त्वचर्चा करते हुए जा रहे हैं। संगीतकार आध्यात्मिक गायन करते हुए जा रहे हैं। इसप्रकार सम्पूर्ण सेना ने उस गुफा को पार किया।

म्लेच्छ खण्ड में प्रवेश —

षट्खण्डाधिपति चक्रवर्ती सम्राट म्लेच्छ खण्ड में पहुँचे। इस युग में आज पहली बार आर्य खण्ड के लोग म्लेच्छ खण्ड में पधारे हैं। चक्रवर्ती की आज्ञा से सेना ने विश्राम किया। सेनापति ने सम्पूर्ण व्यवस्था की।

उस म्लेच्छ खण्ड में **चिलातराज और आवर्तराज राजा** राज्य कर रहे हैं। वे बड़े अभिमानी प्रकृति के हैं, सम्राट के आने का समाचार पाकर वे चिन्तित हुए, क्योंकि वे सम्राट् के पराक्रम एवं वैभव से परिचित हैं; किन्तु कषाय के सामने किसका वश चला है। उन्होंने युद्ध के लिये अपने कुल देवताओं का आह्वान किया तथा अपने सहयोगी देवों से निवेदन किया कि कृपया हमारी रक्षा करें।

मित्र देवों ने कहा कि हम शीघ्र ही भरत की सेना को वापस उसी मार्ग से भेज देंगे, ऐसा कहकर आश्वस्त किया। कालमुख व मेघमुख नामक देवों ने अपने साथी देवों सहित मूसलाधार वर्षा की। आकाश में मानों पूरा स्वयंभूरमण समुद्र ही लाकर रख दिया हो। कहीं आज प्रलय तो नहीं होने वाली, सेना को उस समय ऐसी शंका होने लगी। भयंकर मेघगर्जना हो रही है; जैसे कोई पर्वत ही टूटकर बिखर रहा हो। ऊपर बिजली चमक रही है तो नीचे तेज आँधी-तूफान चल रहा है। जल चारों ओर समुद्र बनकर बहने लगा।

सेना भय से काँपने लगी। सम्राट ने शीघ्र अपने रत्नों का प्रयोग करने की आज्ञा दी। चक्रवर्ती की सेना 48 योजन लम्बे और 36 कोस चौड़े स्थान में व्याप्त है। उतने प्रदेश में छत्र-रत्न ने ऊपर के पानी को रोका और चर्म-रत्न ने नीचे के पानी को रोका।

(पाठकगण यह ना सोचें कि यह चर्म-रत्न चमड़े का होता है। यह तो वज्रमयी अत्यन्त पवित्र और सुन्दर होता है।)

काकिणी-रत्न ने अंधकार को दूरकर प्रकाश किया। इसप्रकार सेना तो निर्भय हुई; किन्तु पानी लगातार बरस रहा था। आज 7 दिन हो गये बरसात रुकने का नाम नहीं ले रही है और प्रकृति का नियम है कि सात दिन से अधिक लगातार वर्षा नहीं होती है। तब भरतजी ने मागधामर से कहा कि देखो कहीं यह कृत्रिम कार्य तो नहीं है। मागधामर ने देखा कि आकाश में कुछ देवगण यह कार्य कर रहे हैं।

भरतजी को नमस्कार कर मागधामर आकाश में जाता है और कुछ ही समय में दोनों देवों को भरतजी की सेवा में हाजिर करता है। भरतजी का तीव्र पुण्योदय चल रहा है; क्योंकि बड़े से बड़ा कार्य भी उनके इशारे मात्र में हो जाता है। **थोड़े समय बाद ही सूचना आई कि राजा चिलातराज और आवर्तराज आपके दर्शन करने की इच्छा से आये हैं।** भरतजी तो तत्त्वज्ञानी हैं, सहज हैं, सरल हैं; अतः

दोनों को क्षमादान, अभयदान देकर सुख से पुनः राज्य का पालन करने की आज्ञा दे देते हैं।

विजयार्ध पर्वत के **अधिपति विजयार्धदेव खण्ड-प्रपात गुफा के अधिपति नाट्यमालदेव, व्यंतर देवों द्वारा पूज्य गंगादेव आदि** एक के बाद एक भरतजी की शरण में स्वयमेव पधार रहे हैं। सम्राट को नमस्कार करते हैं। बहुमूल्य भेंट देते हैं एवं उनका यशोगान करते हैं। भरतजी भी उनका यथायोग्य सम्मान करते हैं और सभी को अपने-अपने स्थानों पर जाने का निवेदन करते हैं।

भरतजी दूसरे दिन सिन्धु नदी की ओर प्रस्थान करते हैं। कई दिनों के पश्चात् सिन्धु नदी के तट पर पहुँचते हैं वहाँ सिन्धु देव ने चक्रवर्ती का भव्य स्वागत किया। आकाश को छू लेने वाले हिमवन पर्वत के पद्मद्रह से निकलकर सिन्धु-कुण्ड में गिरने वाली विशाल सिन्धु नदी को सभी ने वहाँ देखा।

वहीं एक वज्रमयी पर्वत पर स्फटिकमणि से निर्मित **एक जिनबिम्ब हैं**; जिनके मस्तक पर यह पवित्र नदी गिरती है। भरतजी जिनबिम्ब के दर्शन-पूजन करते हैं। पश्चात् वहाँ के अकृत्रिम, अद्भुत सौन्दर्य को निहार ही रहे थे कि **सिन्धुदेव अपनी देवी-सहित वहाँ पधारते हैं और अपनी रानी का परिचय कराते हैं।**

भरतजी कहते हैं— अरे, यह तो बिल्कुल हमारी बहिन-वत् हैं। आज से हमारा इनका भाई-बहिन का सम्बन्ध है। मेरी एक ब्राह्मी नाम की बहिन है। वह तो दीक्षा लेकर कैलाश पर्वत पर तपश्चर्या कर रही है। आज से तुम भी मेरी बहिन हो। सिन्धु देवी को अपार हर्ष हुआ और कहने लगी कि आज मैं धन्य हो गई; षट्खण्डाधिपति की बहिन कहलाने का सौभाग्य पाया है। पश्चात् भाई ने रत्न, आभरण आदि से बहिन का आदर सत्कार कर विदा किया।

भरतजी ने अपनी विजय यात्रा दक्षिण से पश्चिम की ओर शुरू

की थी। अब वे पश्चिम से पूर्व की ओर गमन कर रहे हैं। सेना को उत्तर दिशा में हिमवन पर्वत दिखाई दे रहा है। **हिमवन पर्वत पर शासन करने वाला हिमवंत देव भी अपने परिवार सहित सेना के साथ आगमन कर रहा है।**

भरतजी मागध की ओर देखते हुए कहते हैं कि काश विजयार्ध के समान इस पर्वत में भी एक दरवाजा होता तो हम आगे की शोभा भी देख सकते। मागध विनय-सहित कहता है— स्वामी! इस पर्वत के उस ओर तो भोगभूमि है; जहाँ भोग तो हैं; किन्तु धर्म नहीं है, व्रत, संयम आदि कुछ भी नहीं हैं। उनका इतना भाग्य कहाँ जो आपके दर्शन का लाभ ले सकें, अतः प्रकृति ने ही इस पर्वत में दरवाजे का निर्माण नहीं किया।

मागध ने बहुत बुद्धिमत्ता के साथ अपनी बात कही। वरतनु आदि व्यन्तर भी मागध के चातुर्य पर प्रसन्न हुये। भरतजी ने कहा प्रिय मागध मैं सब जानता हूँ; किन्तु मैंने तो मात्र विनोद के लिये और तुम्हारे चातुर्य को देखने के लिए यह कहा था। ऐसा कहते हुए भरतजी अब वृषभाचल की ओर बढ़ रहे हैं। कुछ दिन पश्चात् उस पर्वत के समीप पहुँचे।

वृषभाचल पर्वत —

अनादि से आज तक अनन्त चक्रवर्ती हुये। सभी षट्खण्ड को जीतते हुये इस पर्वत पर अपने नाम की विजय-प्रशस्ति लिखकर जाते हैं। भरतजी भी अपना शिलालेख लिखते हैं; किन्तु वहाँ बिन्दी बराबर भी जगह खाली नहीं है; इसलिये प्रथम दण्ड-रत्न से एक शिलालेख मिटाया और काकिणी-रत्न से पुनः अपना नाम अंकित कराया।

भरतजी तो तत्त्वज्ञानी हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, विवेकी हैं और वैरागी प्रकृति के भी हैं; अतः तत्क्षण ही तत्त्व-विचार करते हैं कि अरे रे! मेरे नाम को भी कल कोई मिटा देगा।

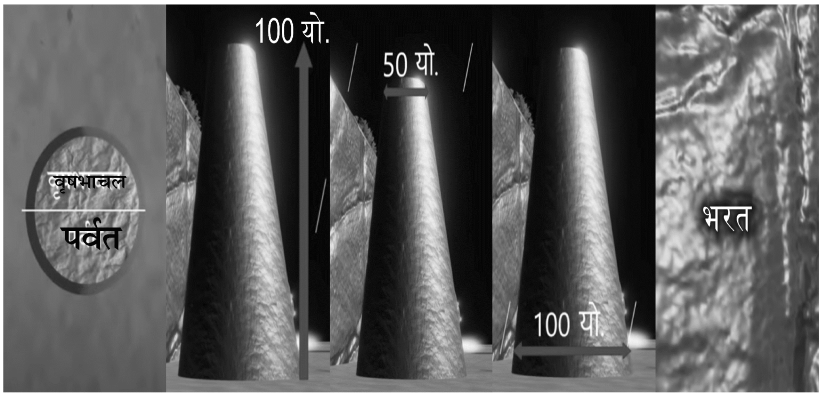

नाम तो देह का है। जब देह ही नहीं रहेगी तो नाम कैसा? धिक्कार है इस क्षणिक चक्रवर्ती पद के ममत्व को।

मैं तो मोह, राग, द्वेष, जन्म, जरा, मरण—इन छह खण्डों को जीतने का पुरुषार्थ करूँगा; आर्य खण्ड आदि जीतना तो मजबूरी है और मोह आदि जीतना जरूरी है। ऐसा तत्त्वचिन्तन करते हुए भरतजी आगे की ओर गमन कर गये।

अब वे कुछ ही दिनों में गंगा नदी के समीप पहुँचेंगे। अभी गंगानदी दूर है; किन्तु गंगादेव ने भरतजी के स्वागत में सम्पूर्ण मार्ग पर रत्नों के तोरण द्वार बनाये हैं। मार्ग को रत्नों के चूर्ण बना-बनाकर रंगोली से सजाया है। स्थान-स्थान पर व्यंतर देव कहीं गीत गा रहे हैं, कहीं नृत्य कर रहे हैं, कहीं भरतजी की जय-जयकार कर रहे हैं। ये सभी दृश्य भरत जी के हृदय को रोमांचित कर रहे हैं।

कुछ समय पश्चात् गंगानदी के तट पर पहुँचकर उन्होंने गंगादेव के आतिथ्य को स्वीकार किया। **सिन्धु देवी की भाँति गंगादेवी को भी भरतजी ने धर्मबहिन के रूप में देखा।** सिंधु नदी के समान गंगा नदी भी जिनप्रतिमा का प्रक्षालन कर रही है। (इसी कारण जगत कहता है कि ईश्वर की जटा से गंगा नदी निकली है।) **अकृत्रिम जिन प्रतिमा पर अनादि अनन्त अविरल धारा प्रवाह से बहती ये नदियाँ मानों**

जिन प्रतिमा के अभिषेक के लिये ही बह रही हों। इस सुन्दर दृश्य को देखने का सौभाग्य हर किसी को कहाँ मिलता है?

भरतजी जिस दिशा में जाते हैं; वहाँ के राजा स्वयं भरतजी का दासत्व स्वीकार करते हैं, अनेक भेंट देते हैं, और तो और अपनी सुन्दर सुयोग्य सुशील कन्याओं का भी भरतजी से विवाह कराते हैं; क्योंकि चक्रवर्ती के नियम से 96000 रानियाँ होती हैं; जिनमें 32000 राजकन्याएँ आर्यखण्ड की, 32000 म्लेच्छ खण्ड की और 32000 सुतायें विद्याधरों की होती हैं। इनमें प्रमुख पटरानी नियम से मामा की पुत्री होती है। **भरतजी की पटरानी का शुभ नाम सुभद्रा देवी है।** ये नमिराज एवं विनमिराज की बहिन हैं। इनकी माता का नाम यशोभद्र और पिता का नाम कच्छराज है। ये रूप में स्वर्ग की किसी देवी से कम नहीं हैं; भरतजी के सात चेतन-रत्नों में यह एक स्त्री-रत्न है। इस रत्न की भी सेवा में 1000 देव दिन-रात रहते हैं।

धर्मचर्चा-दिवस

भरतजी को अयोध्या से विजय-यात्रा को निकले लगभग 30 हजार वर्ष का काल बीत गया। अब भरतजी के पुत्र भी वयस्क हो गये; अनेक विद्याओं में भी निपुण हो गये हैं। एक दिन की बात है। भरतजी ने अर्ककीर्ति, आदिराज, वृषभराज आदि सभी पुत्रों को शास्त्र-विद्या, स्वाध्याय आदि के सम्बन्ध में उनकी बुद्धि कैसी है? यह जानने के लिए बुलाया। सभी कुशल पुत्रों ने अपने शास्त्र-कौशल को दिखलाया; अस्त्र-शस्त्र-कौशल्य में तो कोई शंका ही नहीं थी। कोई पुत्र अनेक तर्कों से तत्त्व की सिद्धि कर रहा है, कोई मात्र संस्कृत के सूत्रों से ही आगम के रहस्य को खोल रहा है, कोई प्राकृत में तत्त्व का प्रतिपादन कर रहा है, एक पुत्र ने तो वैराग्य का इतना मार्मिक एवं प्रभावी वर्णन किया कि भरतजी ने विराम देते हुए कहा कि बस ठहरो पुत्र!! कहीं हमें वैराग्य हो गया तो षट्-खण्ड पर विजय का कार्य अधूरा रह जायेगा;

''देखो, परिणामों की स्वतन्त्रता, एक ओर तो अभिप्राय में पर से भिन्न अपने में अपनेपन का दृढ़ श्रद्धान, दूसरी ओर षट्-खण्डों पर नश्वर विजय का भाव।''

पुनः भरतजी ने अध्यात्म की परीक्षा करते हुए एक अन्य पुत्र से पूछा पुत्र! मोक्ष प्राप्ति का क्या उपाय है? विनय सहित पुत्र बोला कि पिताजी! **व्यवहार से भेद-रत्नत्रय और निश्चय से अभेद-रत्नत्रय।** शाबास बेटा! जरा भेद-अभेद को स्पष्ट करो।

पिताजी! **देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान, सप्त तत्त्व का श्रद्धान, आपा-पर का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण - यह सब भेद रत्नत्रय है** और **पर से भिन्न अपना आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण - यह अभेद-रत्नत्रय है।**

भरतजी :- अरे वाह! आज इन पुत्रों की शास्त्र-निपुणता, तत्त्वप्रेम एवं वैरागी जीवन को देखकर हमारा मन प्रसन्न हो गया।

इसप्रकार सभी राजाओं को अपने अधीन करते हुए पुत्रों को सभी प्रकार की विद्याओं का ज्ञान देते हुए उन्होंने भरतक्षेत्र के 6 खण्डों पर विजय प्राप्त कर ली। षट्खण्ड को जीतकर अपने धवल-यश को तीन लोक में फैलाते भरतजी चले जा रहे हैं। अब भरतेश्वर के अधीनस्थ एक-एक राजा के पास 1-1 करोड़ ग्राम हैं, ऐसे-ऐसे 32 हजार राजाओं के अधिपति सम्राट चक्रवर्ती हैं। भरतजी अपने सम्पूर्ण वैभव, समस्त रानियों, पुत्र-पुत्रियों एवं समस्त सेना-सहित म्लेच्छ खण्ड से आर्य खण्ड में प्रवेश कर रहे हैं।

अयोध्या की प्रजा भी भरतजी के दर्शन करने के लिये तरस रही है। आज ही दो विश्वस्त दूतों को पोदनपुर और अयोध्या-दोनों जगह भेजने की आज्ञा भरतजी ने दी। दोनों माताओं को उत्तम उपहार, बहुमूल्य भेंट के साथ समाचार भेजा गया कि भरतजी आर्य खण्ड में प्रवेश कर चुके हैं। सन्देश पाते ही दोनों नगरों में सभी एक साथ

त्योहार-जैसी खुशियाँ मनाने लगे। नगर में कोई नाच रहा है, कोई गीत गा रहा है, कोई खुशी से भाग रहा है। इसप्रकार के आनन्द का वातावरण हो रहा है।

आर्यखण्ड में प्रवेश करने पर भरतजी अपने पुत्रों सहित सर्वप्रथम आदिप्रभु के दर्शन के लिये समवसरण में कैलाश पर्वत पर पहुँचे। समवसरण के द्वार पर द्वारपाल देव अपने मस्तक को झुकाकर विचारता है कि आज तो स्वयं आदिप्रभु के ज्येष्ठ पुत्र पधारे हैं। आगे-आगे भरतजी पीछे-पीछे हजारों पुत्र उनका अनुकरण करते हुए प्रवेश कर रहे हैं। भरतजी वो पुण्यात्मा जीव हैं, जिनके पुण्य- प्रताप से भगवान की दिव्य-ध्वनि असमय में भी खिरने लगती है।

समवसरण में भगवान के ऊपर देवों द्वारा पुष्पवृष्टि हो रही है, मोतियों की झालरों-सहित तीन छत्र (जो कि तीनों लोक के नाथ के प्रतीक हैं) और रत्नों के 64 चँवर ढुर रहे हैं; अशोक वृक्ष सभी का शोक दूर कर रहा है, भामण्डल सूर्य की भाँति प्रकाशित हो रहा है, असंख्यात देव जय-जयकार कर रहे हैं, खिले हुए कमल के ऊपर सिंहासन पर चार अंगुल छोड़कर आदिप्रभु विराजमान हैं। जिनकी छवि करोड़ों सूर्य और करोड़ों चन्द्रमाओं की द्युति को तिरस्कृत कर रही है।

आज एक सयोगी-जिन के दर्शन करने श्रृंगार-योगी आये हैं। उन्होंने तीन बार साष्टांग नमस्कार कर बहुत भक्ति से भगवान की स्तुति

की। पश्चात् दिव्य-ध्वनि का लाभ लिया। छह द्रव्य, सात तत्त्व, नव पदार्थ एवं पाँच अस्तिकाय का वर्णन सुनकर भरतजी को आनन्द हुआ। भरतजी अपने सभी पुत्रों के साथ समवसरण की भव्यता एवं दिव्यध्वनि की दिव्यता की ही चर्चा करते जा रहे हैं।

भरत के जिन और सुमति नामक दो पुत्रों की दीक्षा

जहाँ सभी पुत्र चर्चा करते हुए जा रहे हैं; वहीं जिनराज और सुमतिराज नामक दो पुत्र मौन से कुछ चिंतवन की मुद्रा में जा रहे हैं। यदि वे नजर उठाकर कुछ देख रहे हैं तो पुनः मुड़-मुड़कर कैलाश पर्वत की ओर ही देख रहे हैं। वे शायद पिता से कुछ कहना चाहते हैं; पर कह नहीं पा रहे हैं। भरतजी को भी उनकी अंतरंग एवं बहिरंग विरूपता दिखाई दे रही है।

भरतजी :- पुत्र जिनराज और सुमतिराज! क्या बात है? तुम इतने शान्त क्यों हो? क्या तुम्हें थकान हो रही है? अथवा किसी का स्मरण हो रहा है? जरा हमें भी तो बताओ।

पुत्र :- पिताजी! आपके सान्निध्य में क्या हमें कोई शारीरिक थकान हो सकती है? नहीं, कदापि नहीं। हमें तो आदिप्रभु के वचनों को सुनकर संसार से थकान हो रही है। अब हमारा इस पर्वत से जाने का मन नहीं हो रहा है। यदि आपको कोई कष्ट ना हो तो हमें अपने हृदय की बात कहने की आज्ञा देवें।

भरतजी :- हाँ पुत्र! अवश्य कहो।

(हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर, आँखों से पिताजी के चरणों का स्पर्श करते हुए)

पुत्र :- पिताजी! हमारी तीव्र इच्छा है कि हम दादाश्री के चरणों में दीक्षा लेकर मोक्ष-महल के अधिपति बनें। कृपा कर अनुमति दीजिये।

(ऐसा सुनते ही भरतजी की आँखों में पानी भर आया। हृदय

काँपने लगा; दोनों पुत्रों को तुरन्त हृदय से लगा लिया।)

भरतजी :- पुत्र! क्या कह रहे हो। अभी से दीक्षा की सोच रहे हो। यदि तुम लोग ही नहीं रहोगे तो यह वैभव, ये साम्राज्य, ये सम्पत्ति किस काम की? मेरी तो इच्छा है कि अभी तुम सुख से महलों में रहो।

पुत्र :- पिताजी! आप किन महलों की और किस सम्पत्ति की बात करते हैं? जो नश्वर हैं हमने तो अपने चैतन्य भवन को देख लिया है जो शाश्वत सुखों को देने वाला है।

भरतजी :- पुत्र! अभी तो तुमने अयोध्या नगरी को भी नहीं देखा है। आपने अपने काका, काकी एवं अन्य परिवारजनों को भी नहीं देखा। कम से कम उनका आशीर्वाद तो लेकर आना।

पुत्र :- पिताजी! आप अयोध्या नगरी, काका, काकी आदि को किन चर्म-चक्षुओं से देखने की बात करते हैं? हम तो तप की ताकत से अनन्त-ज्ञान को प्राप्त कर केवलज्ञान की दृष्टि से सभी को एक साथ देखेंगे। आप तो केवल हमें दीक्षा की आज्ञा देवें।

भरतजी :- बेटा हठ छोड़ो, मैं तुम्हें बहुत उत्सव के साथ भेज दूँगा। अभी कुछ दिन ठहर जाओ।

पुत्र :- पिताजी! क्या विश्वास है कि कुछ दिन ठहरने के पश्चात् दीक्षा का परिणाम भी ठहरा रहेगा। शुभ कार्य को तो शीघ्र ही कर लेना चाहिये।

भरतजी :- पुत्र! तुमने तो शायद हमें दुख देने की ठान ली है। पिता को दुखी करना, पुत्र का धर्म नहीं अपितु आज्ञा मानना, धर्म है।

पुत्र :- पिताजी! कोई किसी को सुखी-दुखी नहीं कर सकता। प्रत्येक जीव केवल अपने मोह से दु:खी होता है। रही बात पुत्र धर्म की; क्या हम कोई खोटा कार्य कर रहे हैं? क्या हमारे इस कार्य से

आपके सम्मान में कोई कमी आने वाली है? और फिर पुत्र का धर्म निभाने के लिये हम दोनों को छोड़कर सभी पुत्र आपकी सेवा में हैं ही; अतः इस उत्तम कार्य के लिये हमें रोककर हमें अपना व हमारा अहित ना करें; आप तो केवल आशीर्वाद देवें कि मोक्षमार्ग में हमारी विजय हो।

भरतजी :- ठीक है पुत्रो! मैंने 32 हजार राजाओं पर तो विजय प्राप्त कर ली; परन्तु आज मैं अपने ही पुत्रों से हार गया। जाओ...जाओ...जाओ...। मंगल भव, धर्मवृद्धि हो।

शायद इसी कारण विधि के विधान में इनका नामकरण जिनराज और सुमतिराज सुनिश्चित हुआ था। भरतजी जमीन की ओर देखते हुए शान्त-चित्त से सेना की ओर गमन कर रहे हैं; जहाँ सभी रानियाँ एवं सेना उनकी प्रतीक्षा कर रही हैं। जिनराज और सुमतिराज की माता भरतेश्वर से पूछती हैं कि हमारे पुत्र कहाँ हैं? समाचार जानकार दोनों माता विलाप करने लगती हैं। विलाप करती माताओं को भरतजी अपनी कुशल-बुद्धि से जिनधर्म का सहारा देकर सम्बोधन देते हैं; उनके चित्त को शांत करते हैं।

मातृ मिलन बेला

भरतजी की आज्ञा से सेना का अयोध्या की ओर प्रयाण हो रहा है। दूत ने पोदनपुर में जाकर माता यशस्वती एवं सुनन्दा देवी को समाचार दिया कि महाराज भरत दिग्विजय से लौट रहे हैं और 10-12 दिनों में अयोध्या नगरी पहुँच जायेंगे। समाचार पाते ही माता यशस्वती शीघ्र ही पुत्र से मिलने की तैयारी करने लगीं। सुनन्दा देवी ने बहुत समझाया कि बहन 10-12 दिन की बात है, पुत्र भरत स्वयं आकर आपके चरण-स्पर्श करेंगे; किन्तु यशस्वती देवी ने एक ना मानी। मानती भी कैसे? आखिर 60 हजार वर्षों बाद माँ का लाल चक्रवर्ती पुत्र वापस आ रहा है।

यशस्वती देवी अपने रथ पर आरूढ़ हो सेना के निकट पहुँचने वाली हैं। दूर से ही भरत की विशाल सेना को देखकर अति हर्षित हो रही हैं। सामने से रथ को आता देख सेना को अनेक शंकायें हो रही हैं कि सामने से कौन आ रहा है। समीप आने पर सबने जाना कि ये तो हमारे सम्राट की माता हैं। सम्पूर्ण सेना में तूफान की भाँति खबर फैल गई। हर्ष से 3½ करोड़ प्रकार के बाजे बजने लगे। जय-जयकार होने लगी।

बाहर के कोलाहल को सुनकर सम्राट महल के मुख्य द्वार पर पहुँचे। समाचार मिला कि माताश्री का आगमन हुआ है। मेरी माता आई है—इसप्रकार असीम हर्ष और अपार प्रेम के साथ वे शीघ्रता से रथ के समीप पहुँचे। स्वर्ग की देवी के समान माता, रथ से नीचे उतर गई। सम्राट माँ के चरण-स्पर्श के लिये झुकें, उससे पहले ही उन्होंने पुत्र को हृदय से लगाया। षट्खण्ड का अखण्ड रूप से पालन करो ऐसा आशीर्वाद देते हुए चिरकाल तक सुखी रहने की कामना की। साठ हजार वर्ष के वियोग के पश्चात् माँ-बेटे का मिलन, चेहरों पर हर्ष और आँखों में अश्रुधारा का अद्भुत दृश्य सभी देख रहे थे।

पश्चात् अर्ककीर्ति आदि सभी पुत्रों ने क्रमश: दादी-माँ के चरण-स्पर्श किये। दादी-माँ पौत्रों को देखकर समझ नहीं पा रही हैं कि ये सभी नरलोक के भरत-पुत्र हैं या सुरलोक के लौकान्तिक देव। पुत्रो! तुम्हारे जैसा भाग्यशाली इस धरती पर कौन है? तुम्हारे भाग्य में ऐसी क्या कमी है जिसका मैं तुम्हें आशीर्वाद दूँ, मुझे ज्ञात नहीं होता -ऐसा कहते हुए उन्होंने सभी को हृदय से लगाया।

पश्चात् भरतजी ने हाथ का सहारा देकर माताश्री को महल में प्रवेश कराया। महल में प्रवेश करते ही 96 हजार रानियों में खलबली मच गई। सासु-माँ पधारी हैं—इसप्रकार का शोर होने लगा; कोई चरण-स्पर्श कर रही हैं तो कोई मूल्यवान वस्तु भेंट कर रही हैं। कुछ रानियाँ

कह रही हैं कि दिग्विजय को जाते हुए आपके चरण-स्पर्श करने तक जो नियम लिये थे; वे आज पूरे हुये।

पश्चात् सम्राट की पुत्र-वधुओं ने भी दादी-माँ के चरण-स्पर्श किये। फिर सभी ने स्वर्ग के अमृत-समान भोजन को ग्रहण कर विश्राम किया।

पोदनपुर में बाहुबली —

आकाश में अरुणोदय हुआ। धरती पर प्रस्थान की भेरी बजाई गई। सबसे आगे चक्ररत्न; पश्चात् नवनिधियाँ, चौदहरत्न सहित चर्म-चक्षुओं से दूसरा छोर ना दिखाई देनेवाली सेना राजमार्गों से गमन करती हुई चली जा रही है। कुछ दिनों बाद पोदनपुर के समीप जाकर अचानक चक्ररत्न ठहर गया। सभी को एक साथ आश्चर्य हुआ। मंत्री द्वारा समाचार मिला कि आपके अनुज बाहुबली आदि आपके आधीन नहीं हैं।

बाहुबली के स्वाभिमानी स्वभाव को जानते हुए भरत ने पहले अपने सभी अन्य सहोदरों को षट्खण्ड विजय का समाचार पत्र भेजा। पत्र का यथार्थ अभिप्राय समझते उन्हें देर नहीं लगी। आखिर थे तो भरतजी के ही सहोदर और प्रथम तीर्थंकर के पुत्र। सभी को संसार का स्वरूप और स्वार्थता का विचार आया। **स्वभाव से स्वतन्त्र शुद्धात्मा बाहर में किसी की पराधीनता का दुख भोगे -यह हमें स्वीकार नहीं; ऐसा विचार करते हुए मौन हो कैलाश पर्वत की ओर चले गये और आदिप्रभु के चरणों में जाकर दीक्षा ले ली।** दीक्षा का समाचार मिलते ही भरतजी को अपार खेद हुआ, साथ ही अपने भाइयों के इस कार्य पर गर्व हुआ।

अब बाहुबली के पास समाचार कैसे भेजा जाये? उलझन खड़ी हो गई; भय भी है और कर्तव्य भी है। कुछ भी निर्णय ना ले पाने के कारण सर्व कार्य दक्षिणांक को सोंपा कि तुम ही पोदनपुर जाकर

किसी भी विधि से बाहुबली को यहाँ लाओ। तथास्तु कहकर अनेक शंकायें लिये बहुत वैभव के साथ दक्षिणांक पोदनपुर के लिये रवाना हुआ।

अपने सभी सेवकों को बाहर ही रोककर दक्षिणांक अकेले बाहुबली की राजसभा में प्रवेश करते हैं। एक राजा में संसार की सर्वाधिक सुन्दरता को देखकर उनकी आँखें ठहर गई। स्वयं को सँभालते हुए उन्होंने चक्रेशानुज-कामदेव को नमस्कार किया और अनेक प्रकार के रत्नों से भरे थाल भेंट किये।

बाहुबली ने आसन ग्रहण करने को कहा तथा पूछा कि "कहो दक्षिणांक कैसे आना हुआ।"

"राजन्! आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ।" इसप्रकार अपने अनुकूल बनाते हुए और बहुत प्रशंसा करते हुए चतुरता से बोलना प्रारम्भ किया।

राजन्! सम्राट की सभी रानियाँ, पुत्र एवं सेनापति आदि सभी ने एक साथ आपके सौन्दर्य को देखने की इच्छा व्यक्त की है; अतः पडाव स्थान पर आकर हम सभी की आँखों को तृप्त करें।

वचनों में और हृदय के भावों में पाई जाने वाली विपरीतता को पहिचानते हुए बाहुबली बोले— कोई-बात नहीं; हम अयोध्या के महल में ही आकर मिलेंगे।

स्वामिन्! महल में हुए मिलन को हमारी आँखें देखने से वंचित रह जाएँगी। सिद्धों की श्रेणी में आने वाले दो जीवों को अर्थात् चक्रवर्ती और कामदेव के मिलन को अथवा दो मेरू-पर्वतों को एक साथ हम कैसे देख पायेंगे; अतः हमारी प्रार्थना स्वीकार करें।

बाहुबली : मैं जानता हूँ, तुम बहुत चतुर हो। वचनों को व्यर्थ में ना गँवाओ। क्या मैं नहीं जानता पोदनपुर के बाहर चक्र-रत्न के रुक जाने का अर्थ और तुम्हारे यहाँ आने का प्रयोजन?

दक्षिणांक : शायद चक्ररत्न भी आपके मधुर मिलन को देखने के लिये रुका है।

बाहुबली : व्यर्थ की वार्ता ना करो, अतंरग की बात कहो पिताश्री के द्वारा प्राप्त राज्य में मैं संतुष्ट हूँ और भ्राताश्री को इतना सब कुछ जीतने पर भी संतोष नहीं; बड़ा आश्चर्य है! मैं अग्रज भ्राता को नमस्कार कर सकता हूँ; परन्तु किसी के अहम् को नहीं।

ऐसा सुनकर दक्षिणांक की आँखों से आँसू टपकने लगे। स्वयं को धिक्कारने लगा कि मैं अपने स्वामी के कार्य में असफल रहा। राजसभा से बाहर की ओर गमन करने लगा। तभी—

मंत्री प्रणयचन्द्र : ठहरो! दक्षिणांक ठहरो!

अपने सिंहासन से खड़े होते हुए हाथ जोड़कर विनय-पूर्वक बाहुबली से विनती करते हुए—

स्वामिन्! आप दोनों आदिप्रभु के पुत्र हैं। दोनों ही सम्यग्ज्ञानी हैं। यदि आप ही लोक व्यवहार को छोड़ देंगे तो सामान्य प्रजा क्यों नहीं छोड़ेगी? संसार में छोटा भाई क्या बड़े भाई को नमस्कार नहीं करता है?

बाहुबली : किन्तु, यहाँ प्रश्न दो भाइयों का नहीं; अपितु स्वामी और सेवक का है।

सुनो दक्षिणांक! मैं अपने भ्राता भरत के हृदय के भावों को समझता हूँ। कर्म-क्षेत्र हो या धर्म-क्षेत्र वे कभी हार स्वीकार नहीं करते; वे युद्ध तो अवश्य करेंगे। उनसे कहना यदि मुझे जीतना है तो युद्ध यहाँ पर नहीं होगा। खुले स्थान पर होगा; जहाँ व्यर्थ में प्रजाजन को कष्ट ना हो।

''वास्तव में एक समय के अपने परिणामों पर भी स्वयं जीव का वश नहीं है। इसे कषाय का कार्य कहें या कर्म के उदय का अथवा

स्वयं के पुरुषार्थ की कमजोरी का; क्योंकि तद्भव मोक्षगामी, क्षायिक सम्यग्दृष्टि दो भाइयों के भी आपस में युद्ध के परिणाम। ये कोई आश्चर्य की बात नहीं; क्योंकि जब तक अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि ना जमे; तब तक ही ऐसे परिणाम होते हैं। जिसकी एक बार अन्तर्मुहूर्त-मात्र अपरिणामी पर दृष्टि जम गई; फिर कभी उसके ऐसे परिणाम नहीं होते; अतः अपरिणामी तत्त्व को ही मुख्य रखना है।''

(सभा समाप्त, दक्षिणांक का गमन)

पोदनपुर से पड़ाव तक का मार्ग बहुत छोटा महसूस हो रहा है। चेहरे पर उदासीनता है। नेत्र अपलक भाव से मार्ग के अलावा कुछ और नहीं देख पा रहे हैं।

किसी कार्य में सफलता मिले तो स्वामी के प्रभाव से हुआ है और असफलता मिले तो हमारा दोष है—ऐसा विचार भरत के सेवक को ही आ सकता है।

रथ पर जाना और पैदल आना; सभी को मौन जानकारी मिल रही है।

भरतजी के दरबार में दूत ने दक्षिणांक के आने का समाचार दिया कि वे पैदल एकाकी बिना ठाट-बाट के राजसभा की ओर पधार रहे हैं। भरतजी क्षणभर में सम्पूर्ण समाचार समझ जाते हैं। कहते हैं कि मैं बाहुबली के स्वभाव को पहले से ही जानता था। फिर भी दक्षिणांक से समस्त वृतांत सुनाने को कहा। दक्षिणांक ने समस्त वृतांत सुनाने के बाद कहा— महाराज! अन्त में चलते-चलते उन्होंने युद्ध का भाव भी व्यक्त किया है। भरतजी को समाचार जानकार अत्यन्त दुख और खेद हुआ कि संसार क्या कहेगा? दो भाइयों में युद्ध। ये कैसी दुविधा? यदि जीत भी गया तो कहेंगे बाहुबली तो छोटा भाई था। इन्हीं विचारों के साथ आज सभा को यहीं विराम दे दिया गया।

बल प्रदर्शन-दिवस

अर्ध निशा का सन्नाटा है। परम दिगम्बर वीतरागी सन्तों के स्वरूप की आराधना करने का अनुकूल समय है। विशाल सेना कई दिनों की थकान के कारण गहरी निद्रा में विश्राम कर रही है। **पड़ाव के किसी कोने में दूर दो पहरेदार आपस में वार्ता कर रहे हैं।**

पहला : जैसे जड़ के बिना वृक्ष की सत्ता सम्भव नहीं उसी प्रकार सेना के बिना चक्रवर्ती सम्राट की भी कोई ताकत सम्भव नहीं।

दूसरा : ठीक कहते हो भाई! क्या सम्राट हमारे बिना किसी एक खण्ड को भी जीत सकते थे।

ये शब्द भरतजी के कानों में पड़े। जिसके नेत्र महल की छत से सूर्य विमान में स्थित अकृत्रिम जिनबिम्ब के दर्शन कर सकते हैं यदि कर्ण इतनी दूर से ये वार्ता सुन लें तो कौन-सा आश्चर्य है।

सम्राट चक्रवर्ती 47263.35 योजन तक के पदार्थों को स्पष्ट देख सकते है और बारह योजन तक के शब्दों को स्पष्ट सुन सकते हैं।

भरतजी ने वार्ता सुनकर मुस्कराते हुए निर्णय लिया कि इनका भ्रम कल दूर किया जायेगा।

भरत जी प्रतिदिन की भाँति जिन-पूजन, सामायिक, भोजन आदि के कार्यों से निवृत्त होकर उदास-मुद्रा से राजसभा में पधारे। सभा में समस्त देशों के राजा, विद्याधर, मंत्रीगण आदि सभी यथा स्थान अपने-अपने सिंहासनों पर सुशोभित हो रहे हैं।

बुद्धिसागर मंत्री : महाराज! आज आपको देखकर नेत्र सन्तुष्ट नहीं हो रहे हैं। क्या कोई चिन्ता है?

भरतेश्वर : नहीं चिन्ता की तो कोई बात नहीं; किन्तु आज अचानक हमारी कनिष्ठा जरा विकृत हो गई है।

(जब भरतजी के विचारों में, परिणामों में, व्यवहार में यहाँ तक कि शरीर के किसी अन्य भाग में वक्रता नहीं है तो अंगुली में वक्रता कैसे हो सकती है -अतः यह जानकर सभी को आश्चर्य हुआ।)

तत्काल अनेकों राजवैद्य जड़ी-बूटी, औषधि का प्रयोग करने लगे; मन्त्रों के ज्ञाता, मंत्र पढ़ने लगे; निमित्तों के ज्ञाता निमित्तों का गणित लगा रहे हैं; तान्त्रिक, तन्त्र-विद्या का प्रयोग कर रहे हैं; बड़े-बड़े पहलवान अंगुली को सीधा करने में अपने बल का प्रयोग कर रहे हैं; किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।

भरतजी ने कहा कि कोई अन्य उपाय किया जाए। अब मेरी ऊँगली में एक विशाल मजबूत मोटी लम्बी लोहे की जंजीर डाली जाये। फिर 48 कोस में व्याप्त समस्त सेना, योद्धा, महाबली, पहलवान, हाथी, घोड़े सभी एक साथ इस जंजीर को खींचें तो शायद अवक्र हो जाये; किन्तु ऐसा करने पर भी ऊँगली सीधी नहीं हुई।

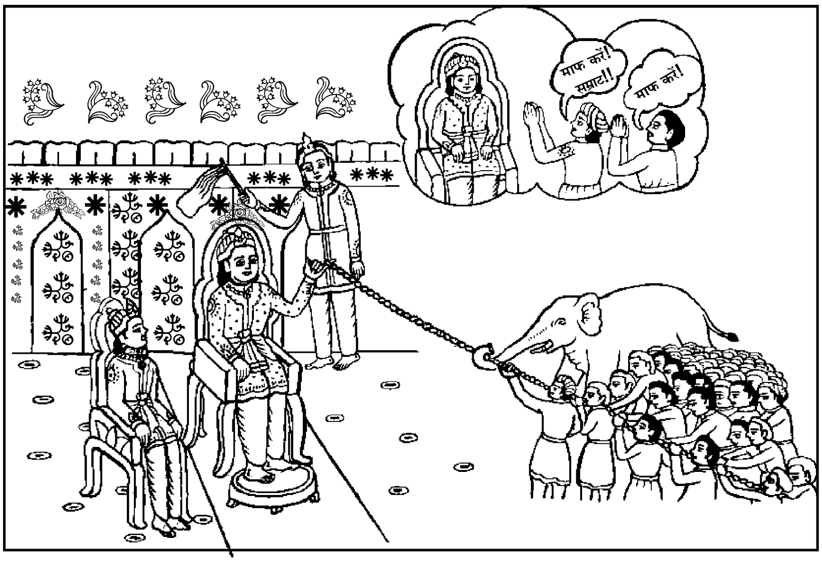

तभी रात्रि में वार्ता करने वाले पहरेदारों को भरतजी द्वारा किये जा रहे नाटक का रहस्य समझ में आ गया। अपना मस्तक भरत के

चरणों में रखकर बोले — सम्राट! हमें क्षमा कर दें; हमारी भूल थी। सचमुच आपसे प्रजा है ना कि प्रजा से आप हैं। **अधिकांश प्रजा को राजा के प्रति, सेवक को स्वामी के प्रति और पुत्र को पिता के प्रति ऐसा भ्रम हो ही जाता है;** अतः समस्त प्रजा को और राज-दरबार के सभी लोगों को भरतजी के द्वारा किये इस कृत्य का रहस्य समझ में आ गया। सभी मुस्कराते हुए अपने-अपने स्थान को लौट गये।

तब भरतजी मुस्कराते हुए बोले — **''यह बल तो शरीर का है इसकी महिमा न होकर अपने आत्मा के अनन्त बल की महिमा होना चाहिए।''**

बाहुबली के दरबार में गुप्तचर ने आकर समाचार दिया कि कल भरतजी ने ऐसा षडयंत्र किया। कषाय में जीव को अनुकूल और इष्ट भी विपरीत भासते हैं; इसलिये बाहुबली को भ्रम हो गया कि बड़े भाई ने मुझे कमजोर दिखाने के लिए अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया है। तत्काल गुणवासन्तक सेनापति को आदेश दिया कि युद्ध की तैयारी की जाए और थोड़े ही समय में बाहुबली अपने श्रृंगार कक्ष से युद्ध के सभी वस्त्रों, आभूषणों आदि से सुसज्जित होकर माता सुनन्दा देवी के कक्ष में आज्ञा लेने पहुँचे।

बाहुबली : प्रणाम मातुश्री।

सुनन्दा देवी : कल्याण हो! पुत्र मैं ये क्या देख रही हूँ। बड़े भाई से युद्ध। जगत में कौन सज्जन पुरुष इस कार्य की प्रशंसा करेगा। मैंने तो सदा तुम्हें सन्तोष और प्रेम का पाठ पढ़ाया है। छोटा भाई तो बड़े भाई की विनय करता है; उससे युद्ध नहीं करता। पुत्र का माँ को सन्तुष्ट करना भी कर्तव्य होता है। शायद मेरे पालन-पोषण में कुछ कमी रह गई है।

इसप्रकार कहते-कहते सुनन्दा देवी की आँखों में पानी छलक

आता है, गला रुँध जाता है और मुख से शब्द निकलना अवरुद्ध हो जाते हैं।

पट्टरानी इच्छा-महादेवी भी विनय सहित प्रार्थना करती है— हे प्राणनाथ ! आप अपना हठ छोड़ दीजिये। मैंने आपके धनुष को तो वक्र देखा है; किन्तु आज तक कभी आपके परिणामों को वक्र नहीं देखा। एक ही पिता के दो पुत्र- एक चक्रवर्ती, एक कामदेव और दोनों आदिप्रभु की सन्तान, दोनों मोक्षगामी जीव। क्या आपको किंचित् भय नहीं कि संसार क्या कहेगा; अतः आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें। इसी प्रकार अन्य रानियों ने भी बाहुबली को समझाने का प्रयास किया।

बाहुबली विचार करते हैं— शायद चक्रवर्ती का पुण्य अधिक होता है; इसीलिये मेरी माता और सभी रानियाँ उसी का पक्ष ले रही हैं।

बाहुबली ने किसी की एक ना मानी। "**जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे**" के अनुसार जीव के परिणाम भी कार्य के अनुकूल ही होते हैं। भरत और बाहुबली का युद्ध होना अच्छा होगा या बुरा यह समय बतायेगा और संसार देखेगा भी।

बाहुबली, ऐरावत समान माकंद हाथी पर सवार होकर अपनी चतुरंग सेना सहित पोदनपुर के मार्गों से आगे बढ़ रहे हैं। नगरवासी अपनी-अपनी छतों से बाहुबली को देख रहे हैं।

(मानों उन्हें भी यह आभास हो रहा है, देख लो शायद आज के बाद कामदेव फिर कभी इस रूप में हमें देखने ना मिल पायें।)

मार्ग में एक व्यक्ति अपने वस्त्रों को उतारते हुए दिखा। यह शकुन है या अपशकुन? जैसी सोच वैसी समझ। बाहुबली के दोनों पुत्र महाबल 10 वर्ष और रत्नबल 8 वर्ष के अपने-अपने हाथियों पर सवार हैं। इसप्रकार बहुत वैभव के साथ बाहुबली, भरत की सेना के समीप पहुँच रहे हैं।

उधर भरतजी के दरबार में दूत ने सूचना दी कि आपके अनुज समस्त सेना-सहित पधार रहे हैं। उनके चेहरे पर कोप भी दिखाई दे रहा है।

भरतेश्वर :— मुझे पता था। मैं जानता हूँ उसके हृदय को, वह बड़ा स्वाभिमानी है।

अबतक बाहुबली, भरतजी के समक्ष आ चुके हैं, दो आमने-सामने हो गये; किन्तु दोनों महाबली के मन्त्री चतुर हैं। वे आपस में युद्ध को टालने का परामर्श कर रहे हैं। दोनों में एक चक्रवर्ती है तो एक कामदेव है। दोनों वज्रकाय वाले हैं। जब दो वज्र टकरायेंगे तो उनका तो कुछ बिगडेगा नहीं; किन्तु बीच की सेना अवश्य नष्ट होगी; अतः हम, दोनों भाइयों से धर्म-युद्ध करने की प्रार्थना करें।

मंत्री-द्वय सहित सभी लोगों ने परस्पर में विचार किया कि दोनों वज्रदेही हैं। दोनों में किसी की हार सम्भव नहीं।

अतः हम दोनों से आपस में धर्म युद्ध करने का निवेदन करें। धर्म-युद्ध से तात्पर्य है कि —

प्रथम दृष्टि-युद्ध होगा। जिसमें दोनों भाई अनिमेष नेत्रों से एक दूसरे को देखेंगे। जिसकी पलक प्रथम झपकेगी, उसकी हार होगी।

(इस युद्ध के पीछे दोनों मंत्रियों को कुछ इसप्रकार की आशा थी कि शायद एक-दूसरे को देखने से दोनों में प्रेम हो जाये। यदि यह प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ तो...)

द्वितीय जल-युद्ध होगा। दोनों आपस में एक-दूसरे के ऊपर पानी फेकेंगे। जो पानी के वेग से मुख फेर लेगा; वह हार जायेगा। (शायद पानी के संयोग की शीतलता से दो भाइयों का क्रोध ठण्डा हो जाये। इतने से भी कोई लाभ नहीं हुआ तो...)

तृतीय मल्ल-युद्ध होगा। जो दूसरे को अपनी बाहों में उठा लेगा उसकी जीत होगी। (शायद इस युद्ध से जब दो भ्राता एक-दूसरे का आलिंगन करेंगे तो अवश्य ही दोनों भाइयों की कषाय शान्त हो जायेगी) सभी ने इस कार्य की अनुमोदना की।

पश्चात् मन्त्री-द्वय सहित सभी लोगों ने दोनों भाइयों से निवेदन किया कि आप दोनों में दृष्टि-युद्ध, जल-युद्ध और मल्ल-युद्ध हो। — ऐसी हमारी विनम्र प्रार्थना है।

दोनों भाइयों ने एक स्वर में स्वीकृति प्रदान की। इससे सभी को अपार हर्ष हुआ।

युद्ध-प्रसंग

कामदेव और चक्रवर्ती गज-पर्वत से ऐसे नीचे उतरे; **जैसे गर्वगिरि से ही नीचे उतरे हों।**

अब दोनों भाई विजयमेरू और अचलमेरू समान आमने-सामने खड़े हैं। आकाश में भवनत्रिक देव, विद्याधर तथा धरती पर राजा, महाराजा, मन्त्रीगण एवं समस्त सेना युद्ध देखने के लिये आतुर हो रही है। दोनों ओर के मन्त्रियों ने अपने-अपने स्वामिओं से युद्ध का निवेदन किया।

बाहुबली ने अपना मुख फेर लिया। युद्ध की पहल पहले बड़ा

भाई करे; क्योंकि उसे ही मेरा राज्य जीतना है। दूसरी तरफ विवेकी भरतजी विचार करते हैं, यदि छोटे भाई से जीत भी गया तो इसमें कौन-सी वीरता है? कौन-सा पुरुषार्थ है? नहीं-नहीं!! मुझे एक बार बाहुबली से अवश्य वार्ता करनी चाहिये। यदि इसने भी हारकर दीक्षा ले ली तो अन्य सहोदरों की भाँति इसे भी खोना पड़ेगा। भरतजी अनुज के समीप आते हैं।

अनुज बाहुबली! आज तुम्हारे और हमारे बीच युद्ध क्यों? मुझे तुम्हारी कोई सम्पत्ति नहीं चाहिए। मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूँ! भाइयों के युद्ध को सज्जन पुरुष कभी नहीं सराहेंगे। मैं तुम्हारा अग्रज हूँ; अतः बुलाने भेजा। यदि तुम अग्रज होते तो मैं तुम्हारे पास अवश्य आता। **जगत में राजा तो तमाशा देखते हैं और आज हम सम्राट होकर स्वयं तमाशा बन रहे हैं। नहीं-नहीं; यह उचित नहीं है। यदि तुम्हें जीतने की अभिलाषा है तो लो तुम जीत गये, मैं हार गया।** वैसे भी मेरी काया 500 धनुष की और तुम्हारी 525 धनुष की; इसलिये तीनों युद्धों में तुम्हारी ही विजय होनी निश्चित है।

यह सुनकर सभी लोग आश्चर्य-चकित हुए। भरतजी क्या कह रहे हैं? अरे, **सूर्य की किरणें भी जिसकी पलकों को नहीं झपका सकतीं; जिसको आकाश पर्यन्त जल उछालने की सामर्थ्य हो। जिसने षट्खण्डों को जीता हो; वह अपने भाई से कैसे हार सकता है? ये तो छोटे भाई के प्रति प्रेम बोल रहा है**—इसप्रकार से सेना में आपसी चर्चा-वार्ता होने लगी।

इसप्रकार भरतजी ने जब अपनी हार स्वीकार की तो **बाहुबली स्वयं को धिक्कारने लगे। आँखों में आँसू भर आये। अब चाहकर भी अपना मुख दिखा नहीं पा रहे हैं;** किन्तु भरतजी विचारते हैं कि शायद बाहुबली अभी नाराज हैं। भरतेश ने पुनः प्रसन्न करने के लिये कहा—

सुनो भाई! मुझे चक्ररत्न की कोई अभिलाषा नहीं है। यह तो स्वयं उत्पन्न हुआ है। इसने मुझे 60 हजार वर्ष तक आदिप्रभु की दिव्य-देशना से बंचित रखा। तुम जैसे भाई से दूर रखा। आज से सभी रत्नों के तुम ही स्वामी हो। समस्त भरतक्षेत्र के तुम ही राजा हो। नहीं चाहिये मुझे यह राज्य-सम्पदा। मुझे तो बस मेरा भाई चाहिये।

पुनः चक्ररत्न को आदेश देते हुए कहा कि **"तुम्हारे अधिपति आज से बाहुबली हैं;"** किन्तु जब चक्र अपनी जगह से जरा भी नहीं हिला, तब भरतजी ने पुनः चक्र को डाटते हुए कहा— **"अरे चक्र-पिशाच! तू जाता क्यों नहीं"** —ऐसा कहते हुए **बलात् चक्ररत्न को बाहुबली की ओर धकेल दिया; ना कि भाई पर चक्र चलाया।**

धक्का खाने से चक्ररत्न को बाहुबली के पास गया तो, पर उनकी प्रदक्षिणा देकर वापस भरत चक्रवर्ती के पास आकर विनम्रता से खड़ा हो गया। सत्य ही है, चक्र बाहुबली के पास रहता भी कैसे ? क्योंकि चक्ररत्न तो पुण्य का दास था, जो कि बाहुबली के पास था ही नहीं। — **यह बात विचक्षण ज्ञान के धनी बाहुबली को समझने में देर नहीं लगी और उनके अन्दर में अपूर्व वैराग्य रस झरने लगा।**

पाठकगण विचार करें सम्यग्ज्ञानी / विवेकी भरतजी क्या भाई पर चक्र चलाने का दुष्कृत्य कर सकते हैं। चक्ररत्न कभी अपनों पर वार नहीं करता। क्या भरतजी को इसका ज्ञान नहीं था। अपने प्रिय भाई पर भरतजी ने चक्र चलाया—यह कहना उचित प्रतीत नहीं होता।

इसप्रकार बड़े भाई के कोमल वचनों को सुनकर बाहुबली की आँखों में भरे आँसू बहने लगे। आज मैंने बड़े भाई के साथ ये क्या किया? मुख तो सीधा किया; किन्तु नजरें अभी देख नहीं पा रही हैं। बाहुबली के पिघलते हृदय को देख अर्ककीर्ति, महाबल आदि सभी पुत्रों को एवं समस्त सेना को आनन्द हुआ।

सभी लोग सम्राट की प्रशंसा कर रहे हैं। देखो तो सही सम्राट की चतुरता; जो बिना युद्ध किए ही भाई को जीत लिया। भरत की बराबरी कौन कर सकता है? भरतेश्वर तो सदा विजयी ही होते हैं।

बाहुबली पश्चाताप की अग्नि में जलकर पवित्र हो रहे हैं वे सोच रहे हैं कि 'मैंने राज्य के पीछे भाई का अपमान किया, धिक्कार है ऐसे राज्य को। अब मैं पुनः राज्य करूँ, — यह मेरे चित्त को कतई स्वीकार नहीं ? मुझे तो अब निग्रन्थ दीक्षा ही धारण करना है।'

''देखो परिणामों की विचित्रता! कहाँ राज्य का राग और कहाँ यह उत्कृष्ट वैराग्य, होनहार को टालने में कौन समर्थ है?''

बाहुबली :— (चरण-स्पर्श करते हुए) भ्राता! मुझे क्षमा करें; मैंने आपके साथ उचित व्यवहार नहीं किया। आपके चित्त को दुखाया। अब आपसे केवल एक ही प्रार्थना है कि मुझे जिन-दीक्षा की आज्ञा दें। मैं बड़े भाई के सामने युद्ध के लिए खड़ा हुआ—इसे संसार कभी क्षमा नहीं करेगा। अब तो इस कलंक का प्रक्षालन कैलाश पर्वत पर जाकर ही किया जा सकता है।

भरत :— (जिसका भय था, वही हुआ।) बाहुबली को शीघ्रता से अपने हृदय से लगाते हुए—नहीं भाई, नहीं! मुझे ऐसी सजा मत

दो। इस बात को भूलकर कोई अन्य बात करो। तुम मेरे साथ अयोध्या चलो, वहाँ एक ही महल में हम प्रेम से रहेंगे।

बाहुबली :— नहीं भाई! अब तो हम तुम्हारी प्रतीक्षा मोक्ष-महल में ही करेंगे।

भरत :— नहीं भाई! तुम जानते हो अन्य सभी सहोदर दीक्षा लेकर चले गये। तुम्हारे चले जाने पर मैं स्वयं को भाग्य-हीन अनुभव करूँगा; अतः कुछ समय के लिय यह विचार छोड़ दो।

बाहुबली :— शायद कल ये परिणाम रहें, ना रहें। आज मुझे संसार के स्वरूप का साक्षात्कार हुआ है; अतः मुझे मत रोको।

बाहुबली प्रातः पोदनपुर से निकले थे तो बड़े भाई के प्रति युद्ध के परिणाम थे और दोपहर में जिनदीक्षा के परिणाम हो गये; संसार और भोगों से विरक्त हो गये। सर्वज्ञ भगवान के बिना कौन जान सकता है कि अगले समय में कैसे परिणाम होंगे? प्रातःकाल युद्ध के परिणाम भी वैराग्य भावों के लिए अनुकूल सिद्ध हुये।

भरत :— (विलाप करते हुए) ठीक है तुमने भी मुझे अकेला छोड़ने की ठान ली है। मैं भी आपके इस उत्तम मार्ग में बाधक नहीं बनूँगा।

जैसे ही बाहुबली कैलाश पर्वत की ओर चले तो साथ में बाहुबली के मन्त्री, सेनापति, अनेक मित्र, सेवक आदि भी दीक्षा लेने चले गये। जब हमारे स्वामी ही जा रहे हैं तो हम यहाँ रहकर क्या करेगें?

उसी समय मार्ग में एक घटना हुई। भरतजी के सेवक कुटिल नायक और शठ नायक (यथा नाम तथा परिणाम) को बाहुबली के प्रति रोष हुआ कि ये हमारे स्वामी के सामने युद्ध के लिये खड़े हुये और दीक्षा लेकर हमारे स्वामी को दुखी किया तो ये सुख से कैसे रह सकते हैं? और उन्होंने बाहुबली से कहा—

''जाओ-जाओ; कहाँ जाओगे? रहना तो भरत की भूमि पर ही पड़ेगा। आहार के लिये भरत के राज्य में ही आना पड़ेगा। आहार, विहार, शयन आदि की सभी क्रियायें इसी भूमि पर करोगे। भरत की भूमि के अलावा तुम्हें कोई स्थान नहीं मिलेगा।''

किन्तु बाहुबली समताभाव से जाकर कैलाश पर्वत के गजवन में निर्ग्रंथ दीक्षा अंगीकार कर ध्यानस्थ हो जाते हैं।

इधर सम्राट भरत ने विलाप करते हुए बाहुबली पुत्रों को गले से लगाया। जिनमें अनेक तो दीक्षा हेतु कैलाश की ओर प्रयाण कर गये, अनेक सम्राट भरत की आज्ञानुसार राज्य में ही रुक गये।

जब यह समाचार माता यशस्वती देवी और सुनन्दा देवी को मिला तो मातायें मूर्छित हो जाती हैं। शीघ्र उपचार करके जागृत किया गया। विलाप करते हुए कहती हैं कि क्या उन्हें रोकने वाला कोई नहीं था? क्या उसे अपनी माँ और अपनी स्त्रियों का विचार नहीं आया? अरे, एक बार अपने पुत्रों की ओर तो देखा होता।

समस्त रानियाँ भी पर-वश हो विलाप कर रहीं है; कुछ तो मूर्छित भी हो रही हैं। धीरे-धीरे धैर्य धारण करते हुए सभी रानियाँ माता सुनन्दा देवी से विनती करती हैं, कि हे माता! जब हमारे प्राण ही हमारा साथ छोड़ गये तो हम निष्प्राण यहाँ कैसे रह सकती हैं? **हे माता! हमें भी आर्यिका दीक्षा लेने हेतु आज्ञा दीजिए। हम भी दीक्षा लेकर इस पर्याय की ननद ब्राह्मी-सुन्दरी के समान भव के अभाव का मार्ग प्रशस्त करेंगे।**

सुनन्दा देवी : पुत्रियो! यदि तुम भी दीक्षा के लिये जा रही हो तो मेरा यहाँ कौन रहेगा? अतः मेरी भी अब महलों में रहने की इच्छा नहीं है।

इसप्रकार जैसे ही महल की सभी स्त्रियाँ बाहर की ओर जाती हैं तो बाहुबली का 8 वर्ष का रत्नबल नामक पुत्र और 3 वर्ष का

सुबल नामक पुत्र माँ का पल्लू पकड़कर पूछता है कि पिताजी कहाँ चले गये? आप सभी हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हैं? मेरे पिताजी कहाँ हैं? रानियों ने सेवकों को बुलाकर कहा इन्हें भरतजी के पास ले जाओ और समझाना कि अब वही तुम्हारे पिता हैं और सुभद्रा देवी ही तुम्हारी माता हैं।

भरतजी सहित समस्त सेना भीगे नेत्रों से इस विदाई को देख रही है।

उनके जाने के पश्चात् भरतजी यथासमय सामायिक के काल में सामायिक के लिए बैठ गये। इस समय राज-पाट, पटरानी, पुत्र आदि तो क्या? वे अपने शरीर को भी भूल जाते हैं। वे बाहर के साथ अन्दर का पुरुषार्थ भी निरन्तर करते रहते हैं। जिनके जीवन का एक-एक क्षण आत्मार्थ-हेतु व्यतीत होता हो, जिनकी भेदज्ञान रूपी प्रज्ञा-छैनी प्रति-समय संसार को छेदने में तत्पर रहे, जो पल-पल स्वयं के शुद्धात्मा को सिद्धत्व के समीप ले जाता हो—धन्य है उस भरत चक्रवर्ती का जीवन।

तीन दिन पश्चात् सम्राट भरत ने बाहुबली के बड़े पुत्र महाबल का राजतिलक करके पोदनपुर का राज्यभार सौंप दिया। अनेक प्रकार का वैभव देकर भरतजी सेना-सहित अयोध्या के लिये रवाना हुये।

अयोध्या नगर में भरतजी सर्व प्रथम जिनमन्दिरजी की ओर जा रहे हैं। मार्ग में माकाल नामक व्यंतर जो अयोध्या नगर और प्रजाजन की रक्षा कर रहा था। भरतजी को नमस्कार कर विनय से बोला—स्वामी साठ हजार वर्ष से नगरवासी आपके दर्शनों की अभिलाषा कर रहे हैं।

जैसे सम्यक्त्व के साथ नरकवास में भी उतना दुख नहीं होता, जितना सम्यक्त्व के बिना जीव को स्वर्ग में होता है वैसे ही आपके साथ जंगलों में रहने वाले सेवकों को तो कोई कष्ट नहीं हुआ;

किन्तु आपके बिना महलों में रहने वालों को बहुत कष्ट हुआ।

समस्त अयोध्या नगरी आज हर्षित है। मानों आज सभी को अपार निधि मिल रही है। राजा बिना नगर सूना-सूना प्रतीत होता था; **जैसे मन्दिर तो था; किन्तु भगवान नहीं थे।**

भरतजी नगर की शोभा को देखते हुए प्रजा की जय जयकार के शब्दों को सुनते हुए अपनी सभी रानियों और पुत्रों के साथ जिनमन्दिर पहुँचे। वहाँ जिनदर्शन, धर्मचर्चा, सामायिक आदि सभी प्रशस्त कार्य करके महल की ओर रवाना हुए। महल में भरतजी का विशेष आदर सत्कार हुआ। महल में विवाहोत्सव के समान आनन्द ही आनन्द हो रहा है। आज छह खण्ड की विभूति एक साथ महल में पधारी है। उत्सव के पश्चात् भरतजी अयोध्या में आनन्द से रहने लगे।

यहाँ प्रसंगोपात्त जानकर चक्रवर्ती के वैभव का कथन किया जाता है — वे षट् खण्ड के एवं अपार वैभव के स्वामी थे, उनके पास चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रत्ननिर्मित रथ, अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी करोड़ पदाति थे। ये वज्रवृषभ नाराच संहनन के धारी थे। उनका समचतुरस्र संस्थान था। उनके शरीर में चौसठ शुभ लक्षण थे। सम्पूर्ण राजाओं के सम्मिलित बल के बराबर उनके शरीर में बल था। उनके दरबार में बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा थे। उनके आधीन बत्तीस हजार देव थे। उनके अंत:पुर में बत्तीस हजार आर्य कुल की रानियाँ थी, बत्तीस हजार म्लेच्छ अनार्य राजाओं द्वारा दी हुई अतिरूपवान रानियाँ थीं, इनके अतिरिक्त उपहार स्वरूप दी गयी बत्तीस हजार और रानियाँ थी। इसप्रकार वे छियानवै हजार अनुपम सुन्दर रानियों के स्वामी थे।

उनके अधिकार में बत्तीस हजार रंगशालायें थीं। उनके राज्य में बहत्तर हजार नगर, छियानवै करोड़ गांव थे। निन्यानवै हजार द्रोणमुख, अड़तालीस हजार पत्तन, सोलह हजार खेट, छप्पन अन्तर्द्वीप, चौदह

हजार संवाह थे। एक करोड़ हल, दो करोड़ हलधर, तीन करोड़ ब्रज गोशालायें, सात सौ कुक्षिवास और अट्ठाईस हजार सघन वन थे। उनके आधीन अठारह हजार म्लेच्छ राजा थे। काल, महाकाल, नेस्सर्प्य, पाण्डुक पद्म, माणव, पिंग, शंख और संवरत्न ये नौ निधियाँ थीं। उनके जड़ और चेतन चौदह रत्न थे।

चक्र, छत्र, दण्ड, असि, मणि, चर्म और काकिणी सात अजीव रत्न थे। सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री सिलावट और पुरोहित ये सात सजीव रत्न थे। चक्र, दण्ड, वर्मि और छत्र ये चार रत्न आयुधशाला में उत्पन्न हुए थे तथा मणि, चर्म और काकिणी ये रत्न श्रीगृह में प्रगट हुए थे। हाथी और घोड़ा की उत्पत्ति विजयार्ध पर्वत पर हुई थी। शेष रत्न, निधियों के साथ अयोध्या में ही उत्पन्न हुए थे। उनकी पटरानी का नाम सुभद्रा था। उसके अनिंद्य सौन्दर्य का वर्णन करने में कविजन भी समर्थ नहीं हो सकते।

सोलह हजार देव उनकी निधियों, रत्नों और उनकी रक्षा करने में सदा तत्पर रहते थे। उनके प्रासाद के चारों ओर क्षितिसार नामक कोट था। सर्वतोभद्र नामक गोपुर था। उनकी सेनाओं के पड़ाव का स्थान नन्दावर्त कहलाता था। उनके प्रासाद का नाम वैजयन्त था। दिक्स्वस्तिका नामक उनकी सभाभूमि थी। भ्रमण में जिस छड़ी को वे ले जाते थे, वह रत्न निर्मित थी। उसका नाम सुविधि था। गिरिकूटक नामक महल में बैठकर वे नगर का निरीक्षण किया करते थे। वर्धमानक नामक नृत्यशाला में बैठकर वे नृत्य का आनन्द लिया करते थे।

विभिन्न ऋतुओं के योग्य उनके अलग-अलग महल थे। गर्मी के लिए धारागृह, वर्षा ऋतु के लिये गृहकूटक था। पुष्करावर्त नामक उनका विशेष महल था।

उनके भण्डारगृह का नाम कुवेरकान्त था। अवतंसिका नाम की उनकी रत्नमाला थी। उनका अजितंजय नामक रथ, वज्रकाण्ड धनुष,

वज्रतुण्डा नाम की शक्ति, सिंहाटक भाला, सुदर्शन चक्र, चण्ड-वेग दण्ड आदि अमोघ शस्त्र थे। उनका विजयपर्वत हाथी, पवनंजय घोड़ा संसार में अद्‌भुत थे। उनका भोजन इतना गरिष्ठ होता था, जिन्हें कोई दूसरा नहीं पचा सकता था।

इसप्रकार चक्रवर्ती की विभूति का वर्णन सीमित शब्दों में सीमित स्थान में करना अत्यन्त कठिन है।

एक नागरिक – (स्वगत ही....) लोग कहते हैं ''भरतजी घर में ही वैरागी'' यह कैसे हो सकता है? छह खण्ड के जो अधिपति हैं, नवनिधि-चौदह रत्न के जो स्वामी हैं, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा जिनके चरणों में झुकते हैं। अरे, छियानवे हजार तो जिनकी रानियाँ है। इतने सब राजवैभव, विषय-भोगों के बीच में भी रहकर कोई वैरागी कैसे हो सकता है ? परन्तु यह बात मैं किससे पूछूँ ? सोचता हूँ महाराज से ही पूछ लूँ, पर भय लगता है कहीं इसमें महाराज का अपमान न हो जाये ? कहीं वे नाराज न हो जायें ? अरे, नहीं...नहीं... हमारे महाराज तो अत्यन्त ही सरल और उदार परिणामी हैं, वे जरूर मेरी जिज्ञासा का समाधान करेंगे। इसमें डरने की कोई बात नहीं है। चलो चलकर महाराज से ही पूछ लेता हूँ। (प्रस्थान)

नागरिक – महाराज की जय हो!

भरतजी – क्या बात है नागरिक ! आज किस कारण से तुम्हारा दरबार में आगमन हुआ ?

नागरिक – महाराज ! मुझे एक जिज्ञासा है। आप उसका समाधान करने की कृपा करें।

भरतजी – जिज्ञासा है, वह तुम निर्भय होकर कहो, हम उसका समाधान करने का प्रयत्न अवश्य करेंगे।

नागरिक – महाराज ! सभी कहते हैं ''**भरतजी घर में ही वैरागी**'' लेकिन आप तो इतने वैभव में रहते हैं, फिर वैरागी कैसे ?

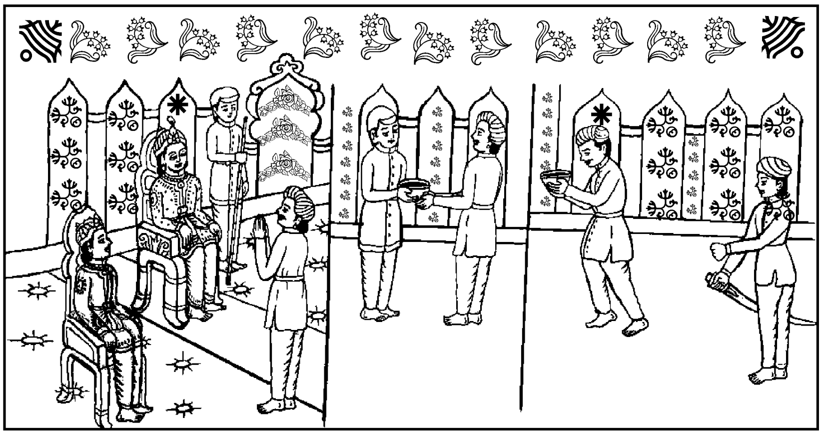

भरतजी – नागरिक ! तुम्हारी जिज्ञासा उचित ही है। हम अवश्य उसका समाधान करेंगे, लेकिन लगता है तुम हमारे दरबार में पहली बार आये हो, क्या तुम हमारा राजमहल घूमना पसन्द करोगे।

नागरिक – हाँ महाराज ! मैं पहली बार ही आया हूँ। जैसी आपकी आज्ञा।

भरतजी – ठीक है नागरिक !

नागरिक – जी महाराज !

भरतजी – सैनिक ! इस नागरिक को अपने साथ ले जाओ, इसे हमारा सारा राजमहल, बाग-बगीचे, खजाने सब दिखाकर लाओ; लेकिन नागरिक! एक शर्त है तुम्हारे हाथ में एक तेल का कटोरा रहेगा, ये सैनिक तलवार लेकर तुम्हारे साथ जायेगा, यदि कटोरे में से तेल की एक भी बूँद गिरी, तो यह तुम्हारा सिर, धड़ से अलग कर देगा। (उन्होंने यह बात सैनिक को पहले ही बता दी थी कि मात्र भय दिखाना है, मारना नहीं है। इसीप्रकार आचार्य कहते हैं कि **यदि हमें चार गति के दुखों से भय लगेगा, तो हमारा मन भी कहीं नहीं लगेगा, उनसे निरन्तर निकलने का भाव रहेगा।**)

नागरिक - (काँपते हुए) जी ऽऽऽ महाराज! (वापस आने पर)

सैनिक - महाराज की जय हो!

भरतजी - कहो नागरिक ! सब देख आये।

नागरिक - नहीं महाराज ! मैंने कुछ भी नहीं देखा, कुछ भी नहीं देखा।

भरतजी - (रोषपूर्वक, तेज आवाज में) सैनिक ! तुमने नागरिक को क्या सब नहीं दिखाया ?

सैनिक - महाराज ! मैंने तो इसे राजमहल, बाग-बगीचे, सभी रानियों के महल आदि सब दिखाये; फिर पता नहीं यह ऐसा क्यों कह रहा है ?

नागरिक - महाराज ! सैनिक का कोई दोष नहीं, उसने तो मुझे सब दिखाया, मैंने ही नहीं देखा; **क्योंकि मेरी दृष्टि तो इस तेल पर थी,** यदि एक बूँद भी गिरती तो मृत्यु निश्चित थी।

भरतजी - नागरिक ! अब तो तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा। **सब कुछ घूमने के बाद भी तुम्हारी दृष्टि सब पर नहीं, मात्र तेल पर थी। इसीप्रकार हमें भी यह सम्पूर्ण वैभव एवं विलासता के साधन सैनिक की भाँति कर्म दिखाता है;** पर हम तो इस वैभव में रहते हुए भी इनमें नहीं रहते, इन्हें अपना नहीं मानते, हम तो अपने अखण्ड शाश्वत चैतन्य स्वरूप में रहते हैं, उसे ही अपना मानते हैं।

नागरिक - धन्य हो महाराज ! आप धन्य हो !! ऐसा कहकर वह "**भरतजी घर में ही वैरागी।**" गुनगनाते हुए चला जाता है।

अब धरती पर उनका कोई शत्रु भी नहीं है, वे षट्खण्ड पर विजय प्राप्त कर चुके हैं; **अन्तरंग के कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने की तैयारी भी चलती रहती है।** राज-पाट और घर-गृहस्थी के सभी कर्तव्यों का पालन सहज हो रहा है।

सातिशय पुण्योदय से नित नवीन-नवीन शुभ समाचार मिलते रहते

हैं। एक दूत ने आकर समाचार दिया कि कच्छ और महाकच्छ मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है जो कि भरतजी के मामाश्री हैं। पट्टरानी सुभद्रादेवी अपने पिता के केवलज्ञान के समाचार को सुनकर बहुत आनन्दित हो रही हैं। महल में उत्सव मनाया जा रहा है; तभी दूसरे दूत ने समाचार दिया कि आपके भ्राता अनंतवीर्य मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। भरतजी ने तत्काल दूत को रत्नों का हार भेंट में दिया। यह तो भरतजी के धर्मानुराग का शुभ लक्षण है।

एक दिन राजसभा में सज्जन पुरुषों से भरतजी ने पूछा— हमारे बाहुबली योगीन्द्र के क्या समाचार हैं? तब वे कहने लगे स्वामी! वे तो एक वर्ष से गजविपिन नामक घोर जंगल में तपस्या कर रहे हैं। आहारचर्या के लिये जाना तो दूर; तब से आज तक नेत्र भी नहीं खोले हैं। वे तो मेरू-समान अचल खड़े हैं; शरीर पर लताओं ने और जमीन पर सर्पों ने अपना स्थान बना लिया है।

भरतजी :— (आश्चर्य से) अरे! फिर भी केवलज्ञान नहीं हुआ। चलो आदिप्रभु से ही इसका कारण जानेंगे। ऐसा निर्णय करके उन सभी ने राजसभा से कैलाश पर्वत की ओर गमन किया। वहाँ पहुँचकर सर्वप्रथम आदिप्रभु की; पश्चात् कच्छ, महाकच्छ और अनन्तवीर्य केवली की वन्दना की। अपने योग्य-स्थान पर बैठकर प्रश्न किया कि प्रभो! बाहुबली को एक वर्ष की कठिन तपस्या के बाद भी केवलज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं हुई? तभी भगवान की वाणी में आया।

सुनो भव्य! बाहर की कठिन तपस्या से केवलज्ञान का कोई संबंध नहीं। बहिरंग परिग्रह छूटना सरल है; किन्तु अंतरंग परिग्रह स्वरूप सूक्ष्म राग का छूटना कठिन है। **अतः वे जंगल में रहकर कठिन तपस्या करके भी सूक्ष्म राग से भिन्न आत्मा का निर्बाध एक मुहूर्त मात्र अनुभव नहीं कर पा रहे हैं; किन्तु जिस प्रकार सूर्योदय होने पर कमल अपनी स्वतन्त्र योग्यता से खिलता है; उसी प्रकार आज**

तुम्हारा वहाँ जाने का योग होगा और काललब्धि पूर्वक स्वतन्त्र अपनी योग्यता से बाहुबली को केवलज्ञान रूपी सूर्य का उदय होगा। चर्म-चक्षु से देखने वाला जगत यही समझेगा कि भरत ने नमस्कार किया; इसलिये केवलज्ञान हुआ।

(पाठकगण स्वयं विचार करें, कि 'मैं भरत की भूमि पर खड़ा हूँ'—ऐसी मिथ्याशल्य मुनिराज बाहुबली को होना क्या संभव है?)

इसप्रकार प्रभु की वाणी सुनकर साष्टांग नमस्कार करके भरतजी ने गज विपिन तपोवन की ओर गमन किया।

घना जंगल है। सूर्य का तीव्र ताप है और बाहुबली को देखकर ऐसा लग रहा है जैसे शरीर से ही लतायें बाहर आ रही हैं। हे योगी! नमोस्तु! नमोस्तु!!

नमोस्तु!!!

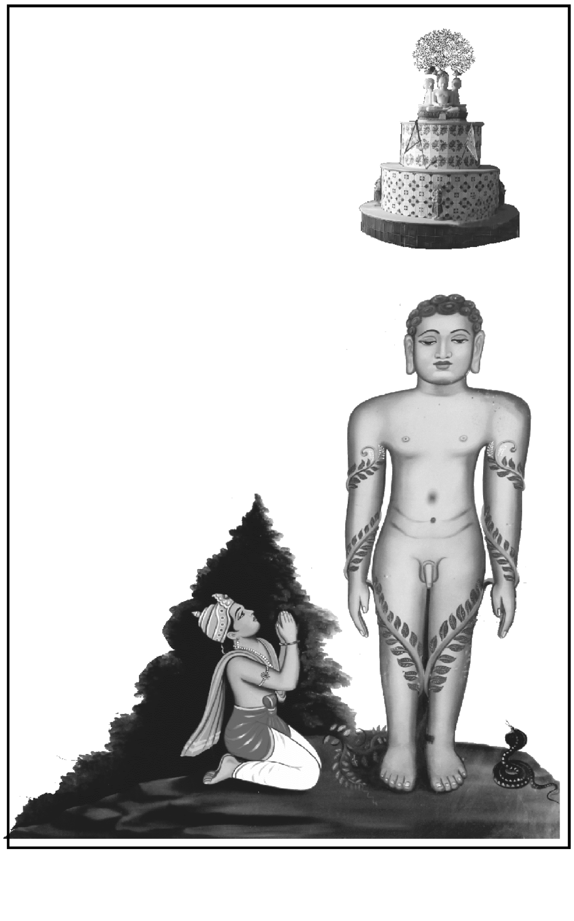

हे महामुनी! देखो तो सही, आयु में मैं बड़ा और तुम छोटे हो; किन्तु आज जिनदीक्षा लेकर तुम गुरू हो गये और मैं लघु रह गया। देखो, जगत का स्वरूप एक दिन मैं तुमसे नमस्कार कराने की इच्छा रखता था और

आज मैं स्वयं तुमको नमस्कार कर रहा हूँ—ऐसा कहते हुये भरतजी का मस्तक बाहुबली के चरणों में झुका हुआ है। अनुज भाई के प्रति मोह के आँसू पाद-प्रक्षालन कर रहे हैं।

उसी समय योगीराज का क्षपकश्रेणी पर आरोहण होने लगा। शुक्लध्यान को प्राप्त हुये और कुछ ही क्षणों में आकाश जय-जयकार के नाद से गूँज उठा। बाहुबली के केवलज्ञान की जय हो, जय हो, जय हो।

भरतजी आनन्दित हुए। भक्ति में नृत्य करने लगे। बाहुबली की रत्नों से पूजा की। पश्चात् साष्टांग नमस्कार करके अयोध्या के लिये प्रस्थान किया।

भरतजी निश्चित ही महापुण्यशाली हैं। आज तक किसी कार्य में उनकी हार नहीं हुई। कर्म-क्षेत्र हो या धर्म-क्षेत्र, सर्वत्र मन के अनुरूप कार्य की सिद्धि हुई है।

भरतजी को आनन्द के साथ रहते हुए और अपने पुत्रों का समय-समय पर विवाह करते हुए बहुत समय व्यतीत हुआ। एक दिन दूत ने आकर समाचार दिया कि अनेक देशों में विहार करती हुई अनन्तवीर्य केवली की गंधकुटी आज अयोध्या नगर में पधारी है। समाचार सुनकर सभी को परम हर्ष हुआ।

भरतराज ने माता यशस्वति एवं परिजन-पुरजन के साथ गंधकुटी की ओर प्रस्थान किया। गंधकुटी में कुछ लोग कह रहे हैं— आज तो जिन-जननी आई हैं। ये हमारे भगवान की माता हैं। अनन्तवीर्य भगवान की गृहस्थ अवस्था की माता हैं — यह जानकर सभी को उनके प्रति विशेष आदर एवं बहुमान का भाव आ रहा था, यहाँ तक कि आर्यिका संघ व मुनिसंघ भी उनको विशेष वात्सल्य से देख रहा था। आज पुत्र को अरहंत के रूप में देखकर माता का रोम-रोम रोमांचित हो रहा है। वन्दना कर, मातुश्री तीसरी सभा में आर्यिकाओं के समीप

नमोस्तु कहकर बैठ गईं। आर्यिकाओं ने कहा— आओ देवी ! तुम भी आर्यिका हो जाओ, तुम्हारे में किस बात की कमी है?

तत्क्षण माता यशस्वती को वैराग्य जागा और विचार किया कि अहो अरहंत की माता कहलाऊँ और महलों में रहकर इन्द्रिय सुख का भोग करूँ —ये शोभा की बात नहीं। ये मेरा सौभाग्य है जो आज मुझे आर्यिका का संबोधन मिला है और इस गंधकुटी में आने का कुछ लाभ तो होना ही चाहिये, तुरन्त भरतजी से माता ने अपने मन की बात कह दी।

माताजी! आप ऐसा ना करें। आप महलों में रहकर ही आत्मकल्याण का अभ्यास करें।

बेटा! तुम्हारे कहने पर ही आज तक महलों में रहकर अभ्यास किया है। अब तो केवली, श्रुतकेवली आदि के समीप रहकर स्त्री पर्याय का छेद करके मोक्षमार्ग प्रशस्त करने की भावना है।

भरतजी कुछ नहीं कह सके और मौन स्वीकृति प्रदान की। माता की दीक्षा-विधि हुई। माता को आहार तो है; किन्तु निहार नहीं है; अतः कमण्डलु की आवश्यकता नहीं; किन्तु जीवरक्षा-हेतु मयूर-पीछी प्रदान की गई। देवों और मनुष्यों ने तथा स्वयं भरत और उनके पुत्रों ने माता यशस्वती की भक्ति की और प्रणाम किया।

माता अब भरत को पुत्र रूप में नहीं देख रही हैं। भरतजी को भी जन्मदात्री माता को आर्यिका माता के रूप में देख अपार हर्ष हुआ और उन्हें प्रणाम कर वे अपने महल की ओर रवाना हुए।

भरतजी की रानियों को भी सासु-माँ की दीक्षा से हर्ष मिश्रित दुख हुआ। वे कहने लगीं— आपके कारण हम अपनी माताओं को भूल गई थीं। आप तो महल को सूना कर गईं। इसप्रकार से विलाप करती हुई रानियों को भरतजी ने सांत्वना दी।

अनन्तमती देवी ने कहा कि माताजी की अनुपस्थिति में मैं अब

महल में नहीं रह सकती। मैं तो महल के मन्दिर में रहकर ही तप करूँगी। उनके साथ अन्य अनेक रानियों ने भी दीक्षा ले ली। यह अनन्तमती मरीचि की माँ है; जिस मरीचि ने आदिनाथ के साथ दीक्षा ली थी और बाद में मार्ग से भ्रष्ट होकर जिनधर्म से विपरीत 363 मत चलाये; किन्तु यही जीव इसी भरतक्षेत्र का अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हुआ।

कुछ दिनों बाद भरत जी को एक पत्र मिला। पत्र वाँचा—

प्रिय पुत्र भरत,

पोदनपुर से माता सुनन्दा देवी का शुभ आशीर्वाद।

अत्र कुशलं तत्रास्तु।

नगर के समीप बाहुबली केवली की गंधकुटी आई है। मेरा भाव है कि हमें केवली की दिव्यध्वनि का लाभ हो और इस निमित्त तुमसे मिलना भी हो; अतः शीघ्र मिलना।

इति...।

तुम्हारी माता सुनन्दा देवी

भरतजी समझ गये कि यह तो माता की दीक्षा लेने की तैयारी है। शीघ्र पोदनपुर पहुँचकर माता को प्रणाम किया और कहा कि क्या बड़ी माता के समान हमें छोड़कर जाने का विचार है? क्या मैंने आपको कोई कष्ट दिया है?

नहीं पुत्र! आयु बहुत हो गई है। अब तो तपश्चर्या करनी ही चाहिये।

भरतजी :— यदि आपके पौत्र जाने दें तो.....

माता सुनन्दा :— बेटा उनके लिये तो अब तुम ही उनके माता-पिता हो।

भरतजी :— हे माता! मैं इस मंगल कार्य की अनुमोदना करता

हूँ। यह एक सहज सुयोग है कि माता यशस्वती ने अपने पुत्र अनन्तवीर्य की गंधकुटी में दीक्षा ली और माता सुनन्दा ने अपने पुत्र बाहुबली की गंधकुटी में।

भरतजी के सोलह स्वप्न

माता के द्वारा दीक्षा लेने के बहुत समय पश्चात् एक दिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में भरतजी ने सोलह स्वप्न देखे। प्रातः सूर्योदय हुआ; नित-प्रतिदिन की पूजा, भक्ति, सामायिक आदि की क्रियाओं के पश्चात् भरतजी ने अपनी पटरानी से सोलह स्वप्न कहे। धीरे-धीरे इन दु:स्वप्नों का समाचार समस्त भरतक्षेत्र में फैल गया।

आश्चर्य है कि किसी सामान्य व्यक्ति को असाध्य रोग हो तो कोई परवाह नहीं; चक्रवर्ती ने मात्र दु:स्वप्न देखे तो आर्यावर्त के समस्त राजा उनसे कुशल-क्षेम पूछने आ रहे हैं। मगध, वरतनु, हिमवंत देव आदि व्यंतर भी भेंट ले-लेकर भरतेश्वर के प्रति शुभ-कामना व्यक्त कर रहे हैं। अनेक वैद्य दोष के परिहारार्थ उपचार कर रहे हैं। कोई विधान कर रहा है तो कोई पूजन कर रहा है; किन्तु सम्राट सहजभाव से जान रहे हैं; वे तो इसे भी स्वप्न-वत् ही देख रहे हैं।

भरतेश :— आप व्यर्थ में चिन्ता ना करें। मैं स्वस्थ हूँ, मुझे कोई कष्ट नहीं है। हम आदिप्रभु से ही इन स्वप्नों का फल पूछेंगे।

समस्त राजागण, मित्रगण, मन्त्रीगण के साथ उन्होंने समवसरण में प्रवेश किया और विनय-पूर्वक एक-एक स्वप्न को बताकर क्रमश: उसका फल जाना। (एक कोड़ा-कोड़ी सागर पूर्व देखे गये स्वप्नों का फल भगवान की वाणी में आया। जैसा वाणी में आया, आज वैसा ही हम सभी देख रहे हैं। सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि का इससे उत्तम उदाहरण और क्या हो सकता है? अत: पूर्व निश्चित परिस्थिति और परिणमन को स्वीकार कर समताभाव धारण करना ही सम्यक् पुरुषार्थ है।) **16 स्वप्न और उनका फल इसप्रकार है—**

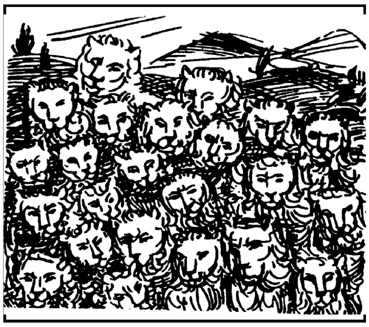

1. तेईस सिंहों को पंक्तिबद्ध जाते देखा।

फल : प्रथम तीर्थंकर को आदि लेकर क्रमश: 23 तीर्थंकर के समय पर्यन्त शिथिलाचारी, परिग्रह-सहित दिगम्बर मुनि नहीं होंगे।

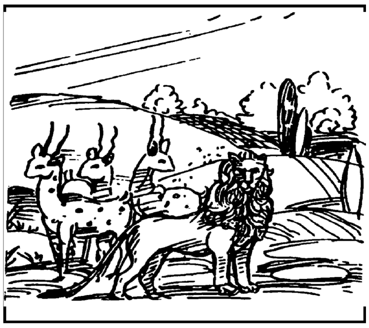

2. अन्तिम चौबीसवें सिंह के पीछे मृगों का समूह जाते देखा।

फल : अन्तिम तीर्थंकर के पश्चात् मिथ्यामतों का प्रचार होगा और जिनधर्म में मतभेद होंगे। यति परिग्रहधारी एवं परीषह सहने में असमर्थ होंगे।

3. विशाल तालाब मध्य में सूखा और किनारों पर पानी देखा।

फल : उत्तम तीर्थों पर धर्म का अभाव रहेगा, हीन स्थानों पर धर्म रहेगा।

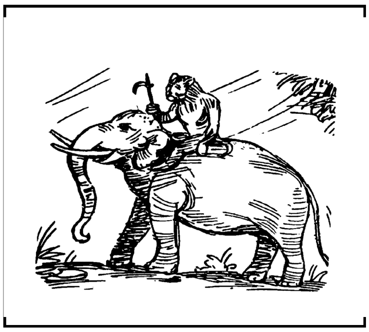

4. बन्दर को हाथी की सवारी करते देखा।

फल : उच्च-कुलीन क्षत्रिय लोगों पर नीच कुलीन लोग शासन करेंगे।

5. **दो बकरों को सूखे पत्ते खाते देखा।**

फल : ऊँचे कुल के मनुष्य शुभाचार से भ्रष्ट होकर हीन आचरण करेंगे।

6. **पत्तों-रहित सूखा वृक्ष देखा।**

फल : कलिकाल के स्त्री-पुरुष शीलव्रत धारण करके भी शीलवान नहीं होंगे।

7. **समस्त पृथ्वी पर सूखे पत्ते बिखरे देखे।**

फल : कलिकाल में मनुष्यों को अन्न और औषधि-जैसी सामग्री नीरस प्राप्त होगी। ये सामग्री पौष्टिकता से रहित होगी।

8. **भूत-प्रेतों को नाचते देखा।**

फल : पंचम काल में वीतरागी देवों को छोड़कर भूत आदि व्यंतर देवों की पूजा करेंगे।

9. एक कुत्ता पूजन की सामग्री खाते देखा।

फल : ढोंगी, असंयमी लोगों की प्रतिष्ठा होगी। धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ, संयमी लोगों का सम्मान नहीं होगा।

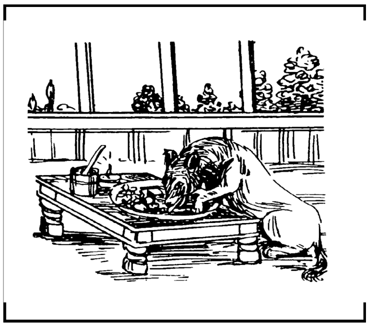

10. उल्लू, कौवा मिलकर हंस को परेशान करते, कष्ट देते देखा।

फल : पापी लोग धर्मात्मा, तपस्वी जीवों की निन्दा करेंगे; उनके धर्म-मार्ग में बाधा और कष्ट पहुँचायेंगे।

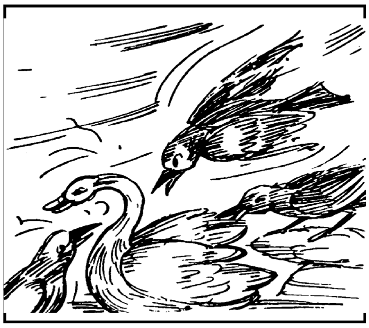

11. हाथी को घोड़ा ले जा रहा है।

फल : पंचम काल में साधु तप धारण करने में असमर्थ होंगे।

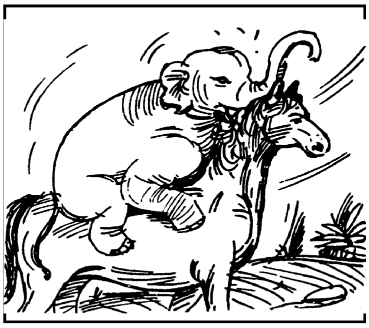

12. एक तरुण बैल देखा।

फल : पंचम काल में जीव तरुण समय में धर्म-ध्यान करेंगे और वृद्धावस्था में शिथिल होंगे।

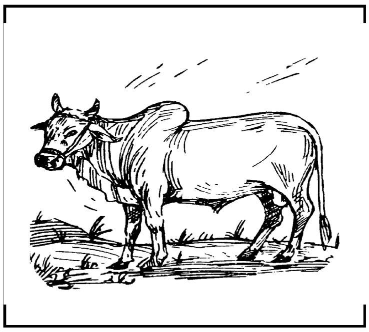

13. विशाल जंगल में मात्र दो बैलों को चरते देखा।

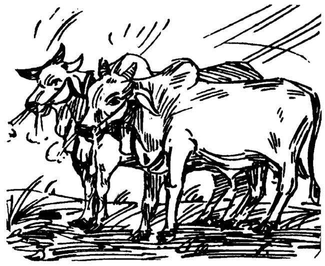

फल : कलियुग में एक-दो मुनिराज ही जंगल और गुफाओं में विचरण करेंगे; शेष तो नगरों में वास करेंगे।

14. रत्नराशि को धूमिल देखा।

फल : पंचम काल में शुक्ल-ध्यानी नहीं होंगे; बल, बुद्धि, ऋद्धि से रिक्त होंगे।

15. धवल चन्द्रमा को मेघों से घिरा देखा।

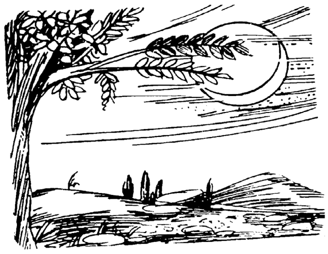

फल : मुनिराज अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान से रहित होंगे।

16. सूर्य को बादलों से ढका देखा।

फल : कलिकाल में केवलज्ञान रूपी सूर्य नहीं होगा और 21 हजार वर्ष के पंचम काल के बाद धर्म का पूर्णतया अभाव होगा।

हे प्रभो! दु:स्वप्न ही सही; किन्तु इनके निमित्त से मुझे आपकी वाणी का लाभ मिला।

एक ओर भगवान की वाणी सुनने का हर्ष हुआ और दूसरी ओर स्वप्नों का फल जानकर अंतरंग में उदासीन भाव और आगामी जीवों के प्रति करुणा का भाव; अत: दोनों परिणामों के धाराप्रवाह में भरतजी को कैलाश पर्वत पर तीन चौबीसी के 72 जिनालयों के निर्माण का भाव जागृत हुआ, जिनको उन्होंने शीघ्र बनाने का निर्देश दिया।

बुद्धिसागर मंत्री का वैराग्य

एक दिन महामन्त्री बुद्धिसागर अपने सहोदर के साथ राजदरबार में उपस्थित हुए। भरतजी को नमस्कार कर प्रार्थना की।

हे स्वामिन्! भरतक्षेत्र में आप-सरीखा कोई राजा नहीं—यह सब जानते हैं। आप राजाओं में राजा और योगियों में योगी हैं आप दो घड़ी में श्रेणी माँडकर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। ऐसा आदिप्रभु की वाणी में आया है। आपकी सेवा में रहकर प्रत्यक्ष मैंने स्वर्ग-सुख का अनुभव किया है। आप स्वयं में परिपूर्ण हैं। आपको मन्त्री की कोई आवश्यकता नहीं।

आपने तो उपचार मात्र मन्त्री पद देकर मेरा गौरव बढ़ाया है। आपके निमित्त लोक में मेरी कीर्ति हुई। मैं हर प्रकार से तृप्त हुआ। अब मेरी आयु बहुत हो चुकी है। अनादि से संसार में अनन्त बार इन्द्रिय सुख भोगा। अब मैं भी ऋषभदेव, बाहुबली, अनन्तवीर्य आदि की भाँति दीक्षा लेकर भव का अभाव करूँगा। यह सुनते ही भरतजी को मित्र-समान मन्त्री के वियोग का असह्य दुख हुआ।

मन्त्रीवर! यद्यपि अन्तिम समय में दीक्षा लेना उचित है; किन्तु कैलाश पर्वत पर निर्मित जिन-मन्दिरों की प्रतिष्ठा तक ठहर जाओ। इस महा-महोत्सव के पश्चात् मैं नहीं रोकूँगा।

राजन्! परिणामों का क्या भरोसा? कल रहे ना रहे। आप तो शीघ्र स्वीकृति प्रदान करें।

भरतजी की आँखें नम हो गईं; स्वयं को धीरज बँधाते हुए उन्होंने कहा कि तुम्हारा वैराग्य सच्चा है। तुम भव का अभाव करो। तुम्हारे अनुज की जिम्मेदारी अब मेरी है। यह कहकर मंत्रीवर को विनय-सहित विदा किया।

कुछ समय पश्चात् समाचार मिला कि कैलाश पर्वत पर जिन-मन्दिर बनकर तैयार हो गये हैं। मंगल कार्य निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न हुआ-यह जानकर किसे हर्ष नहीं होगा? भरतजी ने शीघ्रता से प्रतिष्ठा-महोत्सव की तिथि निश्चित की और समस्त भरतक्षेत्र में अनेक प्रकार की भेंट-सहित निमन्त्रण भेजा गया।

सुमित्रा, सुचित्रा, रत्नमाला, विद्यावती आदि सभी पुत्रियाँ एवं गंगादेवी, सिन्धुदेवी बहिनें पधार गईं हैं। कैलाश पर्वत पर उत्सव तो बाद में होगा; किन्तु महल में तो अभी उत्सव दिखाई दे रहा है। कुछ ही दिनों बाद भरतजी अपने परिजन-पुरजन को साथ लेकर कैलाश पर्वत पर पहुँचे। सर्वप्रथम मण्डप-भूमि को नमस्कार कर भरतजी ने उद्घाटन किया।

भूत, भविष्यत और वर्तमान सम्बन्धी तीन चौबीसी के 72 जिन-मन्दिरों में 72 जिन-प्रतिमाओं को विराजमान किया गया। भरतजी ने जिन-बिम्बों में 'जिन' की स्थापना की है तो शुद्धात्मा में 'सिद्धत्व' की स्थापना भी की है। पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव प्रारम्भ हुआ। चार कल्याणकों के पश्चात् आज मोक्ष-कल्याणक का दिवस है। पश्चात् इस पावन प्रसंग पर भरतजी अपनी रानियों, बहिनों, पुत्र-पुत्रियों आदि सहित समवसरण में गये।

सभी ने भगवंत के अपार हर्ष-सहित भक्ति-पूर्वक दर्शन किये। बहुमूल्य, उत्तम अर्घ्य अर्पण किये। स्वर्ण कमलासन से भिन्न चार अंगुल

ऊपर विराजमान भगवान को पुनः पुनः देख स्त्रियाँ तृप्त नहीं हो पा रही हैं। विशेष क्या, किसी मनुष्य को स्वर्ग में ले जाकर छोड़ दें तो उसकी जैसी दशा होगी; उसी प्रकार आज इन स्त्रियों की दशा हो रही है। अपने-अपने मोह से कोई कह रही है; ये तो हमारे पिता हैं; कोई कह रही है, ये तो हमारे श्वसुर हैं; कोई कह रही है, ये हमारे काका हैं; किन्तु भगवंत इन सबसे अत्यन्त अप्रभावित हैं।

भरतजी :— हे स्वामिन्! यहाँ उपस्थित स्त्रियों में क्या कोई अभव्य भी है?

हे भव्य! तुम्हारे परिवार में सभी जीव महाभाग्यशाली हैं; अतः भव्य ही हैं और सभी स्त्रियाँ अल्पकाल में स्त्री पर्याय को छोड़कर मुक्ति को प्राप्त करेंगी। यह सुनकर भरतजी एवं सभी स्त्रियों को परम हर्ष हुआ। **उसी समय आदिप्रभु की वाणी में आया कि प्रतिष्ठा-महोत्सव में मोक्ष कल्याणक के अवसर पर अनंतवीर्य केवली ने मुक्ति-वधु को प्राप्त किया है।**

अहो! आज अनुज अनंतवीर्य सदा के लिये सिद्धशिला को चले गये। अरे, 'मैं उनका दर्शन भी नहीं कर पाया' उन्हें इस जाति का दुख नहीं हुआ; क्योंकि समवसरण में दुख (क्षोभ) का अभाव रहता है। यदि अन्यत्र यह समाचार मिलता तो शायद किंचित् राग उपजता। भरतजी महापुण्यशाली हैं, जो ऐसे समाचार उनको सुक्षेत्र और सुकाल में ही मिलते हैं।

भरतजी ने समस्त परिवार-सहित अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। अयोध्या पहुँचकर महल में सभी रानियों में एक नवीन आनन्द दिखाई दे रहा है। जहाँ देखो वहाँ समवसरण की ही चर्चा है।

इसप्रकार कैलाश पर्वत पर जिन-मन्दिरों का विशाल निर्माण एवं भव्य प्रतिष्ठा-महोत्सव के पश्चात् सम्राट आनन्द के साथ समय व्यतीत कर रहे हैं और प्रजा का अपनी देह के समान रक्षण कर रहे हैं।

भरतजी के रविकीर्ति, रतिवीर्य, शत्रुवीर्य विजयराज आदि 100 पुत्र; जो कि अनेक विद्याओं और शास्त्रों में प्रवीण हैं; मानों अनेक कलाओं में निपुण एक-एक पुत्र, एक-एक रत्न ही हो—ऐसे पुत्रों को पाने के लिए संसार में भरतजी जैसा ही पुण्य चाहिये।

सम्राट भरत-पुत्रों की दीक्षा

एकबार भरत जी के 100 पुत्र क्रीड़ा-हेतु नदी किनारे उद्यान में गये। वहीं एक-दूसरे की ओर गेंद फेंककर खेल रहे हैं तभी एक पुत्र कहता है कि **यह जीव भी गेंद की भाँति संसार में व्यर्थ भ्रमण कर रहा है। खेल-खेल में एक कुमार कहता है कि 6 द्रव्य, 7 तत्त्व, 9 पदार्थ, 5 अस्तिकाय आदि में एकमात्र जीव ही उपादेय है। दूसरा कहता है जिस प्रकार तिल में तेल, दूध में घी पाषाण में स्वर्ण सारभूत है; ऐसे ही इस शरीर में आत्मा ही सारभूत है। तभी अन्य कहता है, हाँ-हाँ; किन्तु ये दोनों द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं। यदि भेद-विज्ञान का अभ्यास करें तो शीघ्र अनन्त सुखी हो जायें।**

इसप्रकार खेल में भी धर्मचर्चा करते हुए सभी प्रसन्न-चित्त हैं। उसी समय एक दूत ने आकर नवीन समाचार दिया कि हस्तिनापुर के अधिपति और सम्राट भरत के **सेनापति जयकुमार ने समवसरण में जिनदीक्षा ली है।**

एक कुमार ने पूछा कि वे अपना राज्य किसको सोंपकर गये? ज्ञात हुआ कि उन्होंने अपने छोटे भाई विजयराज को कहा कि अब तुम राज्यभार सँभालो।

तब विजयराज बोले— **भार भी कहते हो और सँभालने के लिये भी कहते हो। जिसको आपने भारभूत जानकर छोड़ा; उसे मैं सारभूत जानकर ग्रहण कैसे कर सकता हूँ? अत: मैं भी जिनदीक्षा ही ग्रहण करता हूँ।**

पश्चात् उससे भी छोटे भाई जयंतराज को कहा— तुम सुख-पूर्वक राज्य का पालन करो; तब जयंतराज ने कहा— **जिस राज्य को संसार-वर्धक, तुच्छ और दुख का कारण जानकर आपने छोड़ा, उसे मैं कैसे ग्रहण कर सकता हूँ? जो आपके लिये दुखरूप है, वह मेरे लिये सुखरूप कैसे हो सकता है? मैं तो आपका ही अनुसरण करूँगा।**

तब जयकुमार ने **अपने मात्र 6 वर्ष के पुत्र को राजतिलक करके अपने सहोदरों के साथ जिन-दीक्षा ले ली।**

यह समाचार सुनकर सभी कुमारों को बड़ा आश्चर्य हुआ। सभी ने इस उत्तम कार्य की प्रशंसा और अनुमोदना की तथा तीनों मुनिराजों को परोक्ष नमस्कार किया।

कुमारों में ज्येष्ठ रविकीर्ति बोले— **मनुष्य पर्याय तो जिनदीक्षा हेतु ही प्राप्त होती है। बुद्धि, विवेक और प्राप्त ज्ञान का फल तो मोक्षमार्ग में गमन करना ही है।**

तभी **भरत पुत्र विजयराज** बोले—जिनदीक्षा लेना अति उत्तम कार्य है। अभीतक जो हमारे पिताश्री के अधीन होकर उन्हें नमस्कार करते थे; आज वे ही हमारे पिताश्री चक्रवर्ती के द्वारा वंदनीय हो गये। सचमुच संसार में जिनदीक्षा महान कार्य है।

रविकीर्ति :— प्रिय अनुजो! संसार में जिनदीक्षा समान सुफल देने में कोई समर्थ नहीं; अतः हमें भी संसार के स्वरूप को समझते हुए जिनदीक्षा लेने का उद्यम करना चाहिये।

हाँ-हाँ-हाँ —ऐसा कहकर सभी ने एक स्वर में हर्ष-पूर्वक समर्थन किया। हम सभी कैलाश पर्वत पर जाकर आदिप्रभु के चरणों में दीक्षा लेंगे।

कुमार सुजयराज :—क्या हमें पिताजी से दीक्षा की अनुमति लेने जाना चाहिये?

कुमार जयराज :— आप नहीं जानते पिताश्री कितने चतुर हैं? वे हमें अपने चातुर्य से अवश्य रोक लेंगे।

कुमार रविराज :— कदाचित् पिताजी से अनुमति लेना सम्भव है; किन्तु माताओं से तो बिल्कुल असम्भव है; अतः हमारा वहाँ जाना अनुचित है; क्योंकि फिर दीक्षा लेना बहुत कठिन होगा।

सभी ने एकमत होकर अपने रथ-विमान आदि छोड़कर नंगे पाँव कैलाश पर्वत की ओर प्रस्थान किया। **जिन्हें अपना अविनश्वर स्वरूप ख्याल में आया; उन्हें सारा जगत नश्वर लगने लगा।**

मार्ग में अनेक प्रजाजनों को कुमारों को ऐसी अवस्था में देख आश्चर्य हो रहा है। कोई पूछता है स्वामी! आप नंगे पैर कहाँ जा रहे हैं? उत्तर में कहा—आदिप्रभु के दर्शन करने। मार्ग में जिस नगर में जिस गली से जाते हैं; वहीं उनका स्वागत हो रहा है। सर्वत्र हर्षोल्लास पूर्वक उत्सव मनाया जा रहा है।

शत्रुवीर्य कुमार- बड़े भाई !एकबार आप पिताश्री के साथ समवसरण में गये थे। कृपया उसका वर्णन करें।

रविकीर्ति - अभी कुछ समय पश्चात् अपनी आँखों से ही देख लेना।

शत्रुवीर्य कुमार- आप वर्णन करेंगे तो मार्ग जल्दी तय हो जायेगा।

तो सुनो! जहाँ सभी जीव समान रूप से शरण पायें वह समवसरण है। यह विश्व की सर्वाधिक अनुपम रचना होती है। इसमें 4 कोट और 5 वेदी सम्बन्धी 36 द्वार होते हैं। सभा-मण्डप-भूमि के मध्य सिंहासन पर चार अंगुल ऊपर आकाश में लोकालोक को प्रकाशित करने वाले सूर्य के समान अरहन्त परमात्मा विराजमान रहते हैं **(पाठकगण ध्यान दें — इसका वर्णन अत्यन्त रोचक और विशाल है विस्तार भय से यहाँ वर्णन नहीं किया जा रहा। जिज्ञासुओं को तिलोयपणत्ती आदि ग्रन्थों से जान लेना चाहिए।)**

कुछ समय पश्चात् दूर से कैलाश पर्वत दिखाई देने लगा। वह इतना सुन्दर लग रहा है मानों अनेक चन्द्र-मण्डलों ने मिलकर इसकी रचना की है; अथवा यह रजतगिरी पर्वत ही है; अथवा आदिप्रभु की धवलकीर्ति ही मूर्तरूप होकर एकत्र हो गई है; अथवा भव्य जीवों का पुण्य-संचय ही पर्वत रूप में दिखाई दे रहा है।

इस लोक के मध्य में विशाल पाँच मेरू पर्वत और भी हैं; किन्तु हे पर्वतराज! तुम्हारे समान अन्य पर्वतों में साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा के समवसरण को धारण करने का सौभाग्य कहाँ है?

हे अनुज! इस पर्वत पर चढ़ना सिद्धशिला पर चढ़ने के समान है।

पश्चात् दूर से ही समवसरण दिखने पर सभी भरत-पुत्रों ने नमस्कार किया और वहाँ प्रवेश किया। समवसरण को देखकर पलकें झपकने को तैयार नहीं; मानों तीन लोक की कांति यहाँ एकत्रित हो गई है।

पश्चात् रूप-लावण्य, योग्य श्रृंगार, वैभव आदि से युक्त अति सुन्दर कामदेव-सम कुमारों को भगवंत की ओर आते हुए देवेन्द्र ने आश्चर्य से देखा।

स्वर्गलोक में तो कभी इन्हें देखा नहीं; फिर ये कौन हैं? अवधिज्ञान

से जाना ये तो भरत के आँगन के रत्न हैं। अरे! ये तो रत्न-करण्ड आदिप्रभु के ही रत्नेश हैं। धन्य हैं ये कुमार; पिता प्रथम चक्रवर्ती, चाचा प्रथम कामदेव और दादा प्रथम तीर्थंकर। देवेन्द्र अनेक प्रकार से सर्व सुध छोड़कर विचारों में ही डूब गया।

सभी कुमारों ने स्वर्ण-पुष्पों से अपनी अंजुली भरकर भगवान को अर्घ्य समर्पित किया। मधुरशब्द-पुष्पों से मुखांजुली भरकर भगवान की स्तुति की; साष्टांग नमस्कार किया। पश्चात् वहाँ विराजमान अन्य केवली, श्रुतकेवली, गणधर परमात्मा आदि सभी की यथा-योग्य स्तुति, वंदना की और अपना स्थान ग्रहण किया।

ज्येष्ठ कुमार रविकीर्ति ने हाथ जोड़कर प्रभु से प्रार्थना की—

हे स्वामी! भव का अभाव कैसे हो?

हे भव्यो! **भव से भिन्न अपने आत्मा का अनुभव करने से ही भव का अभाव संभव है;** पश्चात् विस्तार से मुनिधर्म का निरूपण किया। साथ में भगवान की वाणी में आया कि तुम सभी सहोदरों और तुम्हारे पिताश्री का शीघ्र भव का अभाव होने वाला है। इसी भव में तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी।

हे भगवान! यदि इसी भव से हमारी मुक्ति निश्चित है तो हमें शीघ्र ही जिनदीक्षा का मार्ग प्रशस्त करें।

चक्रवर्ती की सम्पदा का पुण्य संसार में कौन नहीं चाहता? धन्य हैं ये कुमार; जो स्वयं चक्रवर्ती के घर में जन्म लेकर चक्रवर्ती की सम्पत्ति का तिरस्कार कर रहे हैं।

सम्राट के 100 पुत्रों ने विधिवत् जिनदीक्षा ग्रहण की। पश्चात् कुमारों के सेवक दुखी मन से अयोध्या की ओर लौट रहे हैं; मानों प्रकृति ने सेवकों से सब कुछ छीन लिया है। रविकीर्ति कुमार का सेवक अरविन्द सबसे आगे चल रहा है। सेवकों के कर-कमलों में

कुमारों के वस्त्र, आभूषण आदि हैं। नगरवासी आगे बढ़कर पूछ रहे हैं हमारे खिलौने जैसे कुमार कहाँ हैं? तुम कुछ बोलते क्यों नहीं? क्या सभी राजकुमार एक साथ दीक्षा लेकर चले गये है? ठीक है, ये सेवक हमसे कुछ नहीं बोलते किन्तु सम्राट से अवश्य बोलेंगे। हम वहीं जाकर सुनेंगे। धीरे-धीरे समस्त नगरवासी सेवकों के पीछे-पीछे एकत्र होते जा रहे हैं और राजभवन की ओर बढ़ रहे हैं।

चक्रवर्ती के समक्ष पहुँचकर सेवकों ने वस्त्र, आभूषण रखे और नमस्कार कर पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़े रह गये।

भरतजी :— कहो अरविन्द! क्या बात है; सभी कुमार कहाँ हैं? तुम्हारी आँखों से आँसू क्यों बह रहे हैं?

अरविन्द :— (आगे बढ़कर) महाराज! सभी कुमारों ने आदिप्रभु के पादमूल में एक साथ जिनदीक्षा.....

(यह कथन भी अनेकों बार विद्वानों की सभा में सुना है कि भरत चक्रवर्ती के ९२३ पुत्र सीधे निगोद से निकले और बीच में अत्यंत अल्पकालिक पाटकीट (इन्द्रगोप,गिंजाई) की त्रसपर्याय धारण कर सीधे भरत चक्रवर्ती के पुत्र हुए और जीवनभर मौन ही रहे, तथा समवसरण में ही आदिप्रभु के समक्ष बोले तो क्या बोले—"प्रभु हमें जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान करें और उसी भव से मोक्ष भी पधारें।" भजन में भी आता है।)

भरत :— नहीं...नहीं... कहते हुए मूर्छित हो गए। पुत्रमोह के कारण मांगलिक कार्य में भी मूर्च्छा आना स्वाभाविक है।

मूर्छा हटने पर वे विलाप करते हुए कहने लगे कि अभी तो ठीक प्रकार से उन्होंने खिलोंनों से भी नहीं खेला था। यह कार्य तो प्रथम मुझे करना था। क्या तुम्हें अपने पिता से भी पूछने का विकल्प नहीं आया? निश्चित ही तुम बहुत समझदार हो। जानते थे कि पिताजी हमें आज्ञा नहीं देंगे। सो अच्छा ही किया।

पश्चात् संयोग-वियोग, हित-अहित, हेय-उपादेय आदि का विचार करते हुए स्वयं को सम्यक् सम्बोधन दिया और सभी सेवकों को अनेक रत्न, आभूषण उपहार में देकर विदा किया।

वास्तव में भरतजी महान पुरुषार्थी हैं जो दुख में भी सुख का अनुभव कर लेते हैं। यही तो सच्चा विवेक है। अन्यथा सर्व-गुणों से शोभित सौ पुत्रों के वियोग का दुख असहनीय होता है। वस्तु-स्वरूप का विचारकर उसे भूलना ही भला है।

सौ-सौ पुत्रों को देखे बिना एक पिता का मन कैसे शान्त रह सकता है? अगले दिन सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही भरतजी शेष पुत्रों के साथ आदिप्रभु के समवसरण में पहुँच गये। अन्य मुनिवरों के साथ नव-दीक्षित मुनिराजों को भी भरतजी ने नमस्कार किया। कैसा है ये संसार, कल तक जिनसे पुत्र का व्यवहार था; आज इसी मनुष्य पर्याय में नमन करनेयोग्य साधु और सेवक का व्यवहार बन गया।

भरतजी ने विनम्रता से पूछा— भगवन! **मोक्ष की प्राप्ति का क्या उपाय है?**

सुनो आत्मन्! **मोह का क्षय हो जाना ही मोक्ष है** अर्थात् सर्व दुखों का छूट जाना, मोक्ष है। इस देह में रागादि कर्म और ज्ञानादि गुण एकक्षेत्रावगाही होकर अनादि से रह रहे हैं। भेदज्ञान पूर्वक दोनों को भिन्न जानकर आत्मा में अपनत्व करने से ही इसकी प्राप्ति होती है। इसप्रकार भगवान के उपदेश को सुनकर भरतजी के अन्तर में विशुद्धि, ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि तीव्रता से होने लगी।

पश्चात् भरतजी ने वहीं आदिप्रभु की पूजा, अर्चना की; तदनन्तर होम किया। कैसा होम किया? औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर रूपी तीन कुण्डों में द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रूपी ईंधन को ध्यानरूपी अग्नि से जलाने का तीव्र पुरुषार्थ प्रारम्भ किया; ऐसा होम किया; किन्तु

अज्ञानी जगत अन्य प्रकार से होम करके मात्र पापों का ही संचय करता है।

इसप्रकार ज्ञान, श्रद्धान, वैराग्य, संयम आदि गुणों को विकसित करते हुए भरतजी अयोध्या नगर में पहुँचे।

एक दिन रात्रि के अंतिम प्रहर में भरत जी ने एक स्वप्न देखा। जिसमें मेरू पर्वत को आकाश-प्रदेशों से लोकाग्र की ओर उड़ते देखा। उसी समय पटरानी ने भी स्वप्न में भरतजी की आँखों में आँसू देखे। दोनों एकदम घबराकर उठे। भरतजी ने रानी से कहा शीघ्र किसी इष्ट का वियोग होने वाला है। **अधिक घबराने की आवश्यकता नहीं है, संयोग का ही वियोग होता है। असंयोगी तत्त्व (शुद्धात्मा) का कभी वियोग नहीं होता; वास्तव में संसार मात्र स्वप्न है।** सांत्वना देते हुए रात्रि बीती। प्रात:काल की प्रथम बेला में ही आकाश-मार्ग से एक विद्याधर ने आकर समाचार दिया कि वृषभेश्वर अब शीघ्र मुक्ति पधारेंगे।

सम्राट ने तुरन्त भरतक्षेत्र के समस्त देशों में समाचार भेजा कि आदिप्रभु शीघ्र मोक्ष पधारेंगे। इस महामहोत्सव में सभी लोग उत्तमोत्तम द्रव्य लेकर पधारें। प्रभु की वाणी का अब कुछ समय ही लाभ मिल सकेगा। इस युग के प्रथम कृषि शिक्षक और प्रथम ऋषि मोक्ष पधारने वाले हैं। कुछ एक दिन में, कुछ दो दिन में—इसप्रकार मात्र 3-4 दिन में सम्पूर्ण देशों से गंगादेव, सिन्धुदेव, नमिराज, विनमिराज, मागधामर आदि व्यंतरदेव, विद्याधर, राजा-महाराजा आदि सभी पधार गये। सभी जन 6 घड़ी सुबह, 6 घड़ी दोपहर, 6 घड़ी सायं — इसप्रकार 7 घंटे 12 मिनट प्रतिदिन भगवान की वाणी का लाभ ले रहे हैं।

सचमुच धर्म का प्रारम्भ आत्मानुभूति से होता है और आत्मानुभूति भगवान की देशना से ही होती है।

भगवान के सान्निध्य में साढ़े 12 करोड़ प्रकार के बाजे बज रहे

हैं, रत्नों की वर्षा हो रही है, मंद-मंद सुगन्धित पवन चल रही है, छहों ऋतुओं के फल-फूल खिल रहे हैं, भूमि दर्पण-सम अति स्वच्छ है, मानों नरलोक और स्वर्गलोक ने मिलकर भगवान की चिर-विदाई की बेला में अपना संपूर्ण बल लगा दिया हो।

परमाणु-परमाणु भगवान की विदाई में प्रशस्त परिणमन कर रहा है। **पुद्गल परमाणु कह रहे हैं** अब हम सदा-सदा के लिए प्रभु को बंधन से मुक्त कर देंगे। **धर्मद्रव्य कह रहा है** कि आदि प्रभु को मुक्तिपुरी में मैं लेकर जाऊँगा; **अधर्मद्रव्य कह रहा है** कि अब अनन्तकाल के लिये प्रभु को सिद्धशिला पर मैं ठहराऊँगा। **काल कह रहा है** कि त्रिलोकीनाथ को नर से नारायण मैं बनाऊँगा। **आकाश कह रहा है** कि मैं प्रभु को सर्वोत्तम स्थान दूँगा। सभी द्रव्य प्रभु की सेवा में उपस्थित होकर अपने को धन्य अनुभव कर रहे हैं।

कहते हैं समवसरण में दिन-रात का भेद नहीं होता। एक सूर्य के सामने करोड़ों दीपकों की उपस्थिति तो हो सकती है; किन्तु उनके प्रकाश का कोई स्थान नहीं होता। इसी प्रकार आदि-सूर्य के सामने चाँद, सितारे, सूरज और रत्नों की उपस्थिति तो है; किन्तु उनके प्रकाश का कोई महत्त्व नहीं।

चार घातिया कर्म तो पहले ही भगवान को छोड़ चुके हैं; अब अघातिया कर्म भी पलायन को तैयार हैं। जिस तीर्थंकर प्रकृति को सारा संसार नमस्कार करता है, आज उस प्रकृति को भी प्रभु छोड़कर जा रहे हैं। आयुकर्म तो पूर्ण वृद्ध हो चुका है; किन्तु वेदनीय, नाम, गोत्रकर्म पूर्ण जवान हैं। प्रभु ने इनको भी वृद्ध करने का उद्यम प्रारम्भ कर दिया है। कुछ ही समय में प्रभु ने तीनों कर्मों की स्थिति भी आयुकर्म के बराबर कर दी है।

अब उन्होंने अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण मात्र 14वें गुणस्थान के अल्प-काल में प्रवेश किया। संसार के समस्त

स्वांग समाप्त हो गये। एक समय मात्र में प्रभु 7 राजू गमन कर समश्रेणी में लोक के अन्तिम भाग तनुवातवलय में अनन्त सिद्धों के बीच विराजमान हो गये। अब वे अरहन्त नहीं कहलायेंगे। अब अनन्तकाल के लिये उनका सिद्ध नामकरण हुआ। **कहने मात्र को अष्टम वसुधा में विराजमान हुए, सचमुच में तो आत्मप्रदेशों में ही विराजमान हैं।**

प्रभु के योग-निरोध प्रारम्भ होने के साथ ही देह अदृश्य हुआ, समवसरण विलीन हो गया। ये सब तो पुण्य के दास हैं; जब प्रभु का पुण्य कर्म ही नष्ट हो गया; तब फिर भला ये कैसे रह सकते हैं? माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन आदिप्रभु ने मोक्ष-सुख प्राप्त किया; जिसे शिव-सुख भी कहते हैं। उस दिन मनुष्य, विद्याधर, देवों ने बहुत उत्सव किये। शाम तक उत्सव पूर्ण नहीं हुए तो रात्रि में भी उत्सव मनाये; इसीलिये उस रात्रि का नाम शिवरात्रि कहा गया। शिव का शाब्दिक अर्थ मोक्ष है, लोक में शंकर को भी शिव नाम से जाना जाता है। अतः भविष्य में शिव के नाम से महाशिवरात्रि लोक में प्रचलित हो गई।

पितृ-मोह की पराकाष्ठा में भरतजी अत्यन्त दुखी हुए। वहाँ विराजमान मुनिवरों ने भरत को संबोधित किया।

राजन्! **प्रभु चर्म-चक्षु अगोचर हुए हैं, ना कि ज्ञानचक्षु अगोचर और तुम भी शीघ्र इसी पर्याय में प्रभु से मिलोगे; व्यर्थ क्यों दुखी होते हो?**

भरत :— हे योगिराज! आपका कथन सत्य है; किन्तु चारित्रमोहनीय कर्म की उपस्थिति है अतः मैं पर-वश हूँ। फिर भी अपने परिणामों की सँभाल का प्रयास करूँगा।

तीन लोक के नाथ का समवसरण जब नष्ट हो गया तो मेरी सम्पत्ति की क्या बात है? ऐसी वैराग्य-भावना भाते हुए उनने अयोध्या की ओर प्रस्थान किया।

कुछ दिन आनन्द से व्यतीत हुए। एक दिन समाचार मिला कि नमिराज और विनमिराज अपने पुत्र कनकराज और शांतराज को राज्य सोंपकर दीक्षा लेकर चले गये। प्रसन्नता की बात है; क्योंकि ये मामा के पुत्र और पटरानी सुभद्रादेवी के सगे भाई हैं। भरतजी को थोड़े-थोड़े समय में ही नवीन-नवीन मंगल समाचार मिलते रहते हैं। भरत जी अंतरंग-बहिरंग दोनों तरफ से आनन्दमय हैं। अंतरंग में एक चौकडी कषाय के अभाव का सुख भोगते हैं तो बाहर में नव-निधि चौदह-रत्न का अपार सुख भोगते हैं; किन्तु अभोगी रहते हैं।

जिसके राज्य में अनेक केवलियों का विहार होता है; जहाँ धर्म-चर्चा ही होती है; मारने की क्रिया तो शतरंज के खेल में ही दिखाई देती है, मनुष्यों में नहीं; जिसके राज्य में मिथ्यादृष्टि भी पाँच पापों के त्यागी हैं; जहाँ सेवक भी अणुव्रती जैसे दिखाई देते हैं; जहाँ भोगी कम और त्यागी अधिक दिखते हैं; जहाँ कमलों से युक्त तालाब एवं क्षीर-नीर के बहते झरने हैं; सुन्दर व सुगन्धित पवन से युक्त उपवनों की शोभा है; जब स्वर्ग के देव इस धरती पर आते हैं तो उनका वापस जाने का मन नहीं करता है; प्रजा से ऐसा वात्सल्य है, जैसे आचार्य का अपने संघ के मुनिराजों से होता है; सौधर्म की शचि-समान जिसकी पटरानी है; जिसे कभी बुढापा छूता नहीं है—ऐसे आनन्द के साथ भरतजी का जीवन व्यतीत हो रहा है।

कहते हैं चिन्ता से बुढ़ापा है और सन्तोष से यौवन है—भरतजी को कभी कोई चिन्ता नहीं है। शायद इसीलिये 84 लाख पूर्व की आयु[१] में से तीन दिन शेष रहने पर भी पूर्ण युवा दिखाई दे रहे हैं।

एक दिन भरतजी को दर्पण देखने का सहज योग बना। बारीकी से देखने पर मुख पर एक झुरकी दिखाई दी।

शायद मुक्तिलक्ष्मी ने झुरकी के माध्यम से शीघ्र ही मुझे अपने पास आने का संदेश भेजा है। - ऐसा विचार करते हुए उनकी सांसारिक

सुख की आशा विलीन हुई। वैराग्य भावना प्रबल हुई। वर्तमान भव के अतीत काल में 84 लाख पूर्व भी यूँ ही बीत गये। संसार में लवण समुद्र के जल को पीकर भी जीव प्यासा रहा। मेरे सुपुत्र और सहोदर तो पहले ही दीक्षा लेकर चले गये; मैं अभी तक इस जड वैभव में मस्त रहा, धिक्कार है! **ये आकाश-प्रदेश के छह खण्डों को जीतना तो कायरता है। जन्म, जरा, मरण, मोह, राग, द्वेष रूपी छह शत्रुओं को जीतना ही सच्ची वीरता है, चक्रवर्तीपना है।** इसप्रकार दृढ निश्चय कर शीघ्र सेनापति अर्ककीर्ति आदि सभी पुत्रों को बुलाकर अपने जिनदीक्षा लेने के भाव व्यक्त किये।

सेनापति :- स्वामिन्! मात्र एक झुरकी के कारण आयुक्षय नहीं हो जाता। कुछ दिन और ठहर जाओ। बाद में दीक्षा ले लेना।

भरतजी :- नहीं, मुझे अब घातिया कर्म नष्ट करने हैं, अब संसार में एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता।

पुत्रो! बताओ तुम्हें किस-किस राज्य की इच्छा है।

सभी पुत्रों ने कहा पिताजी हमें तो मात्र सिद्ध-शिला पर राज्य करने की इच्छा है। भरतजी संतुष्ट हुए और आयु की अति-अल्पता का विचार करते हुए शीघ्रता से दीक्षावन की ओर चले गये।

इधर **6 खण्ड का राग छूटा तो** 6 खण्ड का वैभव भी रूठ कर चला गया। जहाँ **14 गुणस्थान छूटने जा रहे है;** वहाँ 14 रत्न कैसे रह सकते हैं? जहाँ **केवलज्ञानादि नौ ऋद्धियाँ प्रगट होने जा रही हैं;** वहाँ नौ निधियों का क्या काम? जब **पुण्यशाली ही चला गया तो** पुण्यराशि का क्या काम?

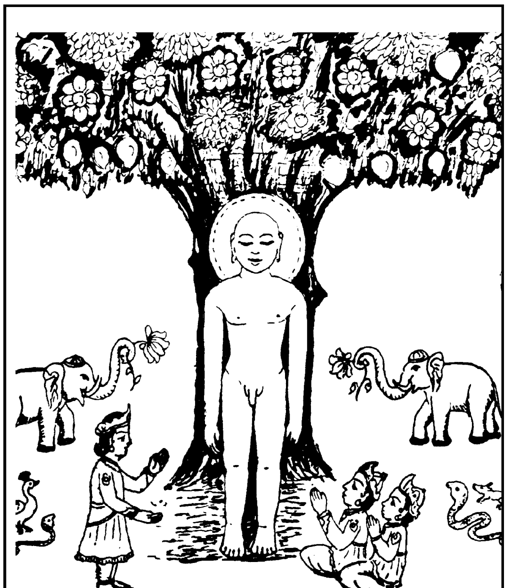

सम्पूर्ण भरतक्षेत्र शोक के समुद्र में डूब रहा है। हाय! हमारे स्वामी हमें छोड़कर चले गये; किन्तु कुछ पुत्र, मित्र और कुछ राजागण प्रसन्न थे; क्योंकि उन्हें आज सम्राट के साथ ही दीक्षा लेनी है। **आज भरतजी जड़रत्न के महल से निकलकर मोक्षमहल के लिये प्रस्थान कर रहे हैं।** अब भरतजी दीक्षावन में शिलातल पर दीक्षा के लिये सन्नद्ध हुए हैं।

जब शरीर ही छूटने जा रहा है तो वस्त्राभूषणों की क्या आवश्यकता? इनकी शोभा तो शरीर के लिये है ऐसा विचारकर उनका त्याग कर दिया। अन्दर में मोह का और बाहर में केश का लोंच किया। मनोयोग का अभाव होने जा रहा है तो मन:पर्यय ज्ञान भी प्रगट हुआ।

पहले **दिग्विजय के लिये विजयार्ध पर्वत के वज्र-कपाट तोड़कर प्रवेश किया था; आज मोक्ष-विजय के लिये कर्म-कपाट तोड़कर प्रवेश कर रहे हैं।** पहले चक्र-रत्न चलाते थे; अब ध्यान-

चक्र चला रहे हैं। **लगता है चक्रवर्ती पद तो छोड़ दिया; किन्तु चक्रवर्तीपना नहीं छोड़ा है। आज भरतेश्वर से लोकेश्वर होने जा रहे है।** अन्तरात्मा से परमात्मा होने जा रहे है और **भरत से भगवान बनने जा रहे हैं।**

चार घातिया-कर्म नष्ट होकर अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हो गई है। अब वे तीन लोक और तीन काल के समस्त पदार्थों को एक साथ जान रहे हैं। गगन-मण्डल भरत भगवान की जय-जयकार से गूँज रहा है। स्वर्गों से देवतागण अपने-अपने विमानों से अनेक बहुमूल्य द्रव्य लेकर पधार रहे हैं। कुबेर द्वारा गंधकुटी की रचना की गई। समस्त आर्यखण्ड से श्रुतकेवली, चारणमुनि, मन:पर्ययज्ञानी, आचार्य, उपाध्याय, साधु, आर्यिका, ऐल्लक, क्षुल्लक आदि गंधकुटी में एकत्रित हो गये। **भरत भगवान की दिव्यध्वनि खिरने लगी।**

सभी जीव अपने अज्ञान से दुखी हैं। जैसा वस्तु-स्वरूप है वैसा ही स्वीकार करके एक समय में यह जीव अनंत काल के लिये सुखी हो सकता है। आत्मा में रत जीव, स्व-समय और पर-पदार्थों में रत जीव, पर-समय कहलाता है।

अर्ककीर्ति :- हे प्रभो! पंचम काल में धर्म का क्या स्वरूप होगा?

पंचमकाल के जीव यथार्थ धर्म को छोड़कर राग में और हिंसा में धर्म मानेंगे।

आदिराज :- भगवान! क्या मुनिधर्म में परिग्रह संभव है?

सुनो भव्य! मुनिराजों के आगे 108 लगाया जाता है। जिसका अर्थ है मुनिधर्म धारण करते समय जीव 108 प्रकार से सभी पापों का त्याग करते हैं। मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदन, समरंभ, समारंभ, आरम्भ और क्रोध, मान, माया, लोभ, अर्थात् $3 \times 3 \times 3 \times 4 = 108$। इसप्रकार प्रतिज्ञा लेकर कोई कण-मात्र परिग्रह रखे तो नरक, निगोद का पात्र है।

देवेन्द्र :- भगवन्! पंचमकाल में क्या धर्म का स्वरूप बदल जायेगा? धर्म के साधक मुनिराज होंगे या नहीं ?

सुनो भव्य! धर्म तो वस्तु के स्वभाव को कहते हैं और स्वभावानुसार होती हुई परिणति को धर्म कहते हैं। पंचमकाल के अंत तक अपरिग्रह महाव्रत के धारी प्रचुर स्वसंवेदन युक्त भावलिंगी मुनिराज भी होंगे।

देवेन्द्र :- प्रभो! पंचमकाल में अपरिग्रह महाव्रत के धारी होकर भी क्या परिग्रह को धारण करेंगे?

हे भव्य! हुण्डावसर्पिणी काल-दोष से मुनि होकर भी कुछ जीव परिग्रह को धारणकर धर्म को लांक्षित करेंगे, वे अपना संसार बढ़ायेंगे। सेवकगण भी स्वयं परिग्रह लाकर देंगे तथा अनन्त दुखों को प्राप्त होंगे।

इसप्रकार पंचमकाल के परिणामों से भयभीत होकर किसी ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया; किसी ने व्रत धारण किये, कोई मन:पर्यय ज्ञानी हुआ, स्त्रियों ने आर्यिका व्रत लिये; जो रानियाँ स्वर्ग की अप्सरा से कम नहीं थी, आज सफेद वस्त्रों में आर्यिका रूप में सुशोभित हो रही हैं।

भरतजी मात्र तीन दिन में भरत से भगवान बन गये, वह उनके समस्त जीवन के अभ्यास का फल है। आज भरत महाराज की इस पर्याय की अन्तिम रात्रि है, उनके साथ बँधे शेष कर्मों की भी अन्तिम रात्रि है। प्रात: अरुणोदय हुआ। अब अंतिम रथ पर भरतजी आरूढ़ हो चुके हैं और कुछ ही समय पश्चात् प्रात:काल की बेला में भरत महाराज अरहंत अवस्था को भी छोड़कर चले गये। **आज उन्होंने छह खण्डों को छोड़कर शाश्वत अखण्ड स्वरूप को प्राप्त कर लिया।**

जिस दिन भरतेश्वर ने पंचमगति को प्राप्त किया उसी दिन संध्याकाल की बेला में उन्हीं के पाँच पुत्रों ने केवलज्ञान प्राप्त किया। इस समाचार से प्रजाजन आदि का दुख कुछ मंद हुआ।

पश्चात् सभी पुत्रों ने जिनदीक्षा ले ली और समस्त रानियों और पुत्र-वधुओं ने भी आर्यिका व्रत ले लिये। जैसे-जैसे ये समाचार भरतजी की गंगा आदि बहिनों और पुत्रियों को मिला, वैसे-वैसे वे विलाप करती हुईं महल में पधार रही हैं।

एक बहिन :- भैया! एक बार अन्तिम दर्शन करने का अवसर भी नहीं दिया।

एक पुत्री :- पिताजी! आप तो हमारा पीहर ही सूना कर गये।

अन्य बहिन :- महल तो आज भी रत्नों का है, किन्तु ना जाने उसकी कान्ति कहाँ चली गई; अब तो महल ऐसा लगता है जैसे किसी जिनालय से जिनदेव ही चले गये हों।

अधिक क्या कहें, सात जीव-रत्नों में किसी ने दीक्षा ले ली तो किसी ने अन्न-जल का त्याग करके स्वर्ग प्राप्त कर लिया। पथ के पथिक, नगर के नागरिक, विद्वान, कविगण, राजा, महाराजा, माण्डलीक-सभी अपने-अपने राग के कारण स्वयं दुखी हो रहे हैं।

जब भरतजी अपनी 6 खण्ड की सम्पत्ति छोड़ सकते हैं तो हम अपनी तुच्छ सम्पत्ति क्यों नहीं छोड़ सकते —इस विचार से अनेकों ने दीक्षा ले ली।

षट्खण्डाधिपति जब अपार भोगों का त्याग कर सकते हैं तो हम अल्प भोगों का त्याग क्यों नहीं कर सकते —ऐसा विचार कर अनेक लोग तपस्वी बन गये।

सभी स्त्री-पुरुष वैरागी हो दीक्षा ले रहे हैं। कुछ लोगों को इस प्रकार की चिन्ता भी होने लगी कि यदि सभी दीक्षा ले लेंगे तो इनको आहार कौन देगा?

अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख-वैभव सम्पन्न भरतजी भावमोक्ष-महल से द्रव्यमोक्ष-महल के द्वार पर पहुँचे। वहाँ मुक्तिलक्ष्मी ने वरमाला

डाली। अबतक पटरानी सुभद्रा देवी थी; अब पटरानी मुक्तिरमा होंगी। क्षमा गुण, अपनी शान्ति बहिन को लेकर आया। चारित्र गुण, विरक्ति बहिन को लाया—इसप्रकार अनन्त गुण, अपनी अनन्त पर्याय रूप बहिनों को लेकर आग्रह कर रहे हैं कि आप इनका वरण करें। पहले मात्र 96000 थीं; अब अनन्त हैं।

इसप्रकार धन्य है भरतजी और धन्य है उनकी कथा। इस कथा के लेखन का कार्य लगभग छह महीने चला। इन दिनों ऐसा ही अनुभव हुआ कि हम भी सम्राट भरत के साथ जीवन जी रहे हैं। वे राजसभा में हैं तो हम भी राजसभा में हैं। वे दिग्विजय पर हैं अथवा गंगा-सिन्धु नदी के तट पर हैं या महलों में हैं या किन्हीं केवली भगवान के समवसरण में हैं। सभी जगह हम उनके साथ ही हैं। पाठकों को भी निश्चित ही ऐसा अनुभव हुआ होगा; किन्तु जब उन्होंने सिद्ध-शिला की ओर गमन किया तो मात्र एकान्त, अकेलापन और सूनेपन का आभास हो रहा है।

क्यों?

क्योंकि इस मार्ग में जीव अकेला ही जाता है। याद आती हैं कविवर हुकमचंद भारिल्ल की ये प्रासंगिक पंक्तियाँ—

ले दौलत प्राणपिया को तुम मुक्ति न जाने पाओगे,
यदि एकाकी चल पड़े नहीं तो खड़े यहीं रह जाओगे।
एकत्व तुम्हारा है स्वरूप एकत्व तुम्हारा साथी है,
लो चलो आज चैतन्यराज आया ऐरावत हाथी है।।

इसप्रकार यहाँ भरतेश्वर की **भरत से भगवान तक** की यात्रा तो पूर्ण हुई, मेरी/हमारी कब होगी....?

इस कथा का लेखन और वाचन करने वाले सभी जीवों की परिणति निर्मल हो इसी भावना के साथ.....।

❖ ❖ ❖

उलझना नहीं, सुलझना हमें सीखना है।

'भाई का भाई से लड़ना नहीं है कोई अनोखी बात।
भरत अर बाहुबलि भी लड़े' – अरे लड़ने वाले यह कहें।।
भाइ! मैं नहीं चाहता अरे जगत में हो ऐसा परिहास।
भाइयों के लड़ने का भाइ ! नहीं बनने दूँगा इतिहास।। 9।।
बाहुबलि से लड़ने की बात अरे मैं सोच नहीं सकता।
अधिक क्या और हारते हुये उसे मैं देख नहीं सकता।।
और लड़ने-मरने की बात किसी से मैं कर सकता नहीं।
मन्त्रि परिषद में करो विचार शान्ति से क्या हो सकता सही ?।। 10।।
अरे दोनों पक्षों के मन्त्री भी तो नहीं चाहते थे।
कि दोनों भाई परस्पर लड़ें व्यर्थ ही मनमुटाव होवे।।
उक्त तीनों युद्धों के पीछे भी तो यही भावना थी।
अरे भाई भाई में बन्धु लड़ाई ना होवे तो ठीक।। 14।।
आँख से आँख मिलेगी जब नेह उमड़ेगा अन्तर में।
और जल के छीटों से भी अरे माथा ठण्डा होगा।।
अरे जब मल्लयुद्ध के लिये गले से गले मिलेंगे वे।
फिर तो सभी समस्यायें सहज ही सुलझा लेंगे वे।। 15।।
बाहुबलि के थे वार्ताकार कूटनीती के अति मर्मज्ञ।
भरत की मूल शक्ति सेना सबल थी चक्ररत्न के साथ।।
उसे कर दूर शक्ति से हीन किये थे उनने भरत नरेश।
युद्ध को बना दिया था खेल निहत्थे किये भरत चक्रेश।। 19।।
यद्यपी भरत जानते थे और सब समझ रहे थे खेल।
फिर भी किया सहज स्वीकार उन्हें भी इष्ट नहीं था युद्ध।।
हराना नहीं चाहते थे हारना भी तो क्यों चाहें?।
तो इसका यही अर्थ है साफ कि लड़ना नहीं चाहते थे।। 20।।
भरतजी के मन की यह बात कोई भी नहीं जानता था।
कि उनको हार-जीत की बात भाई से नहीं सुहाती है।।
व्यर्थ ही खेल-खेल में लड़ें व्यर्थ का नाटक करते फिरें।
किसी से हारें अथवा अरे किसी को व्यर्थ हराते फिरें।। 21।।

बाहुबलि ! आओ आओ पास वहाँ ऐसे कैसे तुम खड़े ?।
अरे तुम मेरे छोटे भाइ और हम हैं तुमसे कुछ बड़े।।
अरे तुम छोड़ो सभी विकल्प हमें तुमसे लड़ना है नहीं।
हमें तुमसे है अतिशय प्रेम व्यर्थ में हमें झगड़ना नहीं।। 28।।
बन्धुवर बिना लड़े ही अरे जीतने और जिताने की।
आपकी यह अद्भुत है कला अरे सर्वस्व लुटाने की।।
आप छह खण्डों से कितने विरक्त यह बात जानने की।
अरे हम में थी क्षमता नहीं बन्धुवर तुम्हें जानने की।। 51।।
आप तो अनुमति करें प्रदान मुझे कुछ नहीं चाहिये और।
करो न अनुमति की कोइ बात और जो चाहो सो ले लो।।
अरे रे मेरे प्रियतम बन्धु ! न तुम मुझसे मुखड़ा मोड़ो।
और क्या अधिक कहूँ हे बन्धु ! मुझे न इसप्रकार छोड़ो।। 56।।
आ गई वही सामने बात कि जिसकी मुझको शंका थी।
आप भी दीक्षा न ले लें यही मुझको आशंका थी।।
आपके बिना आपका राज अरे मुझसे सम्भलेगा नहीं।
आपके बिना अकेले बन्धु ! अरे मुझसे कुछ होगा नहीं।। 57।।
भाइ-भाई निबटा लेते बड़ी से बड़ी बात भाई !।
यही सब बतलाती यह कथा और कुछ नहीं बात भाई !।।
'भाईयों से भाई लड़ते' नहीं है इसका यह इतिहास।
शान्ति से होते कैसे काम यहाँ तो है इसका इतिहास।। 81।।
यदि कुछ तुम्हें सीखना है कथा से तुम सीखो यह बात।
'लड़ना' नहीं सीखना भाइ ! 'नहीं लड़ना' सीखो हे भाइ !।।
अरे लड़ना तो जानें सभी 'नहीं लड़ना' ही सीखना है।
उलझना नहीं सीखना है सुलझना हमें सीखना है।। 83।।
सुलझना ही है मुक्तिमार्ग उलझना तो है जग-जंजाल।
जगत की उलझन को कर दूर काट दो तुम जग का जंजाल।।
चाहते हो तुम आतम शान्ति आतमा को अपना लो भाई !।
आतमा में जम जावो भाई ! आतमा में रम जावो भाई !।। 84।।

– साभार, भरत का अन्तर्द्वन्द्व, अध्याय-7

➤ हमारे प्रकाशन ➤

चौबीस तीर्थंकर पुराण	(हिन्दी)	75/-
चौबीस तीर्थंकर पुराण	(गुजराती)	50/-
शिवपुर के राही (मल्टीकलर)	(श्री कानजीस्वामी का जीवनदर्शन)	50/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-1	(लघु कहानियाँ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-2	(सगर चक्रवर्ती, वज्रवाहु, सुकौशल)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-3	(ब्रह्मगुलाल, अंगारक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-4	(श्री हनुमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-5	(श्री पद्म (राम) चरित्र)	25/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-6	(अकलंक-निकलंक नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-7	(अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8	(8 अंग और 5 अणुव्रतों की कथा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-9	(शासन नायक श्री वर्द्धमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-10	(सुभौम चक्रवर्ती, अमरकुमार नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-11	(सती अनंगसरा,निमित्त-उपादान नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-12	(बालि मुनिराज,महारानी चेलना नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-13	(यशोधर मुनिराज, धन्यकुमार कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-14	(नाटक-राजा श्रीकंठ, पुण्यप्रकाश...)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15	(बंधुश्री एवं लुब्धक सेठ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-16	(सती मनोरमा एवं पं. टोडरमल नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-17	(प्रद्युम्नकुमार,जयकुमार,सूर्यमित्र कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-18	(सेठ सुदर्शन, दीवान अमरचंद नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-19	(षट् लेश्या, श्री जीवंधर चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-20	(श्री वरांग चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-21	(श्री गुरुदत्त चरित्र,सम्यक्त्वलीला नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-22	(श्री सुकमाल चरित्र, मृगध्वज कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-23	(श्रीकृष्ण, चंदनवाला कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-24	(उपसर्गजयी संजयंतमुनि, राजा श्रेणिक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-25	(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-26	(बाईस परीषह : संवाद के रूप में)	30/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-27	(तू किरण नहीं सूर्य है)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-28	(लघु कहानियाँ, एकांकी नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-29	(भरत से भगवान : एक जीवनयात्रा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-30	(भगवान पार्श्वनाथ चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-31	(भगवान नेमिनाथ चरित्र)	20/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
ई.सन् १९२४
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

सत्समागम
ई.सन् १९४३
अषाड़ सुदी दोज
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
ई.सन् २२.२.१९४७
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा...।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**–इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।